क्रियों में घृणित वा निन्दित हो जाने पर भी सर्वत्र निन्दित वा घृणित नहीं हो सकता कि जैसे मनुष्य स्त्री पुरुषों का मैथुन विशेष लज्जास्पद हो जाने पर भी पशु पक्षी कीट पतङ्ग स्थावर वृक्षादि तथा पुष्पादि में होने वाला मैथुन [कि जो उन २ की उत्पत्ति का मूल कारण है] लज्जास्पद नहीं है। इसी के अनुसार जब लौकिक पदार्थों के ही सब मलादि घृणित नहीं हैं। तब देवता का मल भस्म अपवित्र कैसे होगा?। क्या गोस्वामी भगवद्मूर्त्ति के स्नान कराये जल [चरणामृत] में मनुष्य के स्नान जल कीसी भावना कभी करते हैं?। यदि वैसी भावना करेंगे तो चरणामृत को परमपावन मान कर कदापि आचमन नहीं कर सकेंगे क्योंकि वैसी भावना से चरणामृत में घृणा वा अपवित्र वासना होजायगी। तब इसी के अनुसार महा पवित्र सर्वजगत्पावन प्रत्यक्ष अग्नि देवता के भस्म रूप मल में भी वैसी निकृष्ट भावना नहीं करनी चाहिये। सुवर्ण पवित्र वस्तु है इसी कारण सुवर्ण का मल भी पवित्र है सुवर्ण के मल को कोई भी मनुष्यादि के अशुद्ध मलवत् घृणित नहीं मानता। परन्तु शास्त्रानुकूल मनुष्य शरीर अपवित्र तथा अशुद्ध है इस से मनुष्य का मल मूत्रादि अपवित्र है। और अग्नि देवता महापवित्र हैं इसीसे उस का मल भस्म भी अत्यन्त शुद्ध वस्तु है। सारांश यह है कि मल वा पुरीषादि शब्दों का अर्थ वास्तव में बुरा नहीं किन्तु मनुष्यादि खास २ व्यक्तियों के बुरे होने से उन २ के मलादि बुरे हैं और अग्नि आदि दिव्य शक्तियों के मलादि भी शुद्ध हैं। अब आशा है कि हमारे पाठक तथा गोस्वामी जी इतने लेख से भस्म को पवित्र और अपने आक्षेप का सच्चा समाधान देख सुन कर सन्तुष्ट हो जावेंगे और आशा है कि आगे को कान भी न हिलावेंगे॥

अब यहां तक स्मार्त्त धर्म पुस्तक के प्रथमाध्याय की मीमांसा वा खण्डन होगया। इस से आगे ८॥ साढे आठ पृष्ठों में गोस्वामीने मनुस्मृति के परस्पर विरोध दिखा के उस का खण्डन किया है और यह मान लिया है कि सर्व शिरोमणि एक मानवधर्मशास्त्र का खण्डन हो जाने पर सभी शास्त्रों का खण्डन होगया मान लिया जायगा। सो आगे उन के लेख को अक्षरशः लिख कर क्रमशः समाधान करेंगे सो देखिये।

गोस्वा०—अब मनुस्मृति का परस्पर विरोध यहां दिखाया जाता है (प्रथमाध्यायः)

उद्बबर्हात्मनश्चैव मनःसदसदात्मकम्।
मनसश्चाप्यहङ्कार० ॥ १४ ॥

अर्थ-ब्रह्माजी ने परमात्मा से मन की सृष्टि की और मन से अहंकार को उत्पन्न किया। क्या परमात्मा स्वयं मन को नहीं उत्पन्न कर सकता था ?। जो ब्रह्मा जी ने परमात्मा से मन उत्पन्न किया !। मन से अहंकार किया !। यहां तो मन से अहंकार किया लिखा है। और इसी अध्याय में ७५ के श्लोक में लिखा है कि-

मनःसृष्टिंविकुरुतेचोद्यमानंसिसृक्षया ॥
आकाशंजायतेतस्मात् ॥

अर्थ-सृष्टि से प्रेरित मन सृष्टि करता है। मन से आकाश उत्पन्न होता है। कहीं मन से अहंकार की उत्पत्ति लिखी है और कहीं आकाश की ॥

समाधान-किसी खास ग्रन्थ में नहीं किन्तु प्रायः ग्रन्थों में ऐसी अनेक शङ्का मनुष्यों को अपनी २ अल्पज्ञता से और ग्रन्थों की व्यवस्था लगाने समझने की शक्ति न होने से हुआ करती हैं सो यह दोष गोस्वामी आदि अदूरदर्शी वा पक्षपातग्रस्त मनुष्यों का है किन्तु धर्म के तत्त्वदर्शी दीर्घ-दर्शी सूक्ष्मदर्शी मनु आदि महर्षियों का दोष नहीं है। यदि गोस्वामी आदि लोग यह भी शोचलेते कि हमारी अपेक्षा मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रों के निर्माता लोगों का पाण्डित्य सहस्त्रों गुणा हम से अधिक बढ़ा चढ़ा है कि जो उन के निर्मित ग्रन्थों से विद्वानों को प्रतीत हो रहा है। क्या मधुसूदन गो० को मनुस्मृति जैसे धर्मशास्त्र के बनाने की शक्ति है ? यदि शक्ति नहीं है तब मनुस्मृति के परस्पर विरोध दिखा कर खण्डन के लिये उद्यत होना ऐसा ही है कि जैसे किसी की निगाह [दृष्टि] में फरक पड़जाने से उसको सब पदार्थ धुंधले कुरूप दीखने लगें तब वह कहता है कि सभी का रूप बिगड़ गया सब खराब हो गये। वा धूली तथा बादलों के बीच में छाजाने से सूर्यनारायण का प्रकाश वा तेज जिस की आखों तक साक्षात् नहीं पहुंचता किन्तु छाया हो जाती है वह कहता मानता है कि सूर्य का प्रकाश वा तेज मन्द हो गया। सो क्या कोई विचारशील पुरुष भी मान लेगा ? कि सूर्य का तेज कभी मन्द हो जाता है। इसी के अनुसार गोस्वामी को अपनी कम अकली से वा पक्षपात के कारण धर्मशास्त्रों का महत्त्व नहीं सूझता तो क्या मानलें कि स्मृति धर्मशास्त्रों का खण्डन हो गया।

अस्तु-मनुजी ने अ० १ के १४ वें श्लोक में मन से अहंकार की उत्पत्ति लिखी और श्लोक ७५ में मन से आकाश की उत्पत्ति लिखी सो ये दोनों

बातें परस्पर विरुद्ध क्यों हैं ? यह गोस्वामी को खोल कर साफ २ लिखना था । क्या एक कारण से कई कार्य पैदा नहीं हो सकते ? क्या एक पृथिवी से अनेक प्रकार के परस्पर विरुद्ध वृक्ष वनस्पत्यादि बराबर पैदा नहीं होते ? यदि होते हैं तो मन से दो पदार्थों की उत्पत्ति दीखने से क्यों घबरा गये ? । और गोस्वामी जी क्या ही विलक्षण तर्क करते हैं पाठक देखिये " क्या परमात्मा स्वयं मन नहीं उत्पन्न कर सकता था ? जो ब्रह्मा जी ने परमात्मा से मन उत्पन्न किया ! " हम पूछते हैं कि क्या परमात्मा आप को उत्पन्न नहीं कर सकता था ? कि जो आप के माता पिता ने आप को उत्पन्न किया ? । मनुष्य सृष्टि के अनेक पदार्थ भोजन वस्त्रादि जिनको मनुष्य लोग बनाया करते हैं परमात्मा उन सब को क्यों नहीं बना सकता ? यह बात पहिले गोस्वामी जी बतावें । जो अनेक ब्रह्माण्डों की उत्पत्तिस्थितिप्रलय का भार अपने पर लिये हुए है क्या उसके लिये छोटे २ काम कर सकने कठिन हैं ? । इसका उत्तर गोस्वामी कुछ नहीं दे सकते । और वेदोक्त सनातन धर्म के सिद्धान्तानुसार तो उत्तर यह है कि परमात्मा ही उन २ कामों को भिन्न २ नाम रूपों में प्रकट होता हुआ करता है । इसी के अनुसार ब्रह्मा नाम रूप से परमात्मा ही मन आदि की सृष्टि करता है । जैसे पृथिवी के किसी विकार से जब कोई कार्य होता है तो उस पर यह भी कह सकते हैं कि अमुक नाम रूपमें आई पृथिवीसे अमुक पदार्थ पैदा हुआ । इसीके अनुसार सर्वत्र जानो।

गोस्वामी—इस (१) अध्याय के ७८ श्लोक में लिखा है—

ज्योतिषश्चविकुर्वाणादापोरसगुणाःस्मृताः ।

अर्थः—विकुर्वाण तेज से, रस गुण वाले जल, उत्पन्न हुए । और इसी अध्याय के ८ वें श्लोक में लिखा है (अपएवससर्जादौ) अर्थ—अपने शरीर से सब से पूर्व जल ही सृजा देखिये कहीं कुछ कहीं कुछ ॥

समाधान—मनुस्मृति में जो सृष्टि रचना का प्रकार लिखा है वह सब वेद वेदान्तादि का मर्मावगाहन से निकले सारांश को लेकर लिखा गयाहै । चाहे यों कहो कि सांख्य और वेदान्त के अविरुद्धांश असली सिद्धान्त का गूढ़ाशय लेकर जैसा श्रीभगवद्गीता में सृष्टि रचनादि विषयों का वर्णन है वैसा ही विचार यहां मनुस्मृति में भी जानो । मनुस्मृति के अ० १ के पांचवें श्लोक में उसी महा प्रलय की दशा दिखाई है कि जिस का वर्णन ऋग्वेद अष्टक ८ । अ० ७ वर्ग १७ में—

नासदासीन्नोसदासीत्तदानींनासीद्रजोनोव्योमापरोयत् ॥
तमआसीत्तमसागूढ़मग्रे० इत्यादि ॥

जिन श्रुतिस्मृतियों का अभिप्राय यह है कि महाप्रलय के समय न असत् था न सत् था न परमाणु थे न आकाशादि सूक्ष्म स्थूल भूत थे किन्तु यह सब अन्धकार स्वरूप था। प्रत्यक्ष कुछ भी होने योग्य न था उस दशा को जानने का कोई चिह्न भी नहीं था कि जिस से अनुमान किया जाय किन्तु तर्क द्वारा भी कुछ जाना नहीं जा सकता था और सब ओर से सोया हुआ सा होने से शब्दादि के द्वारा भी कुछ जानने योग्य नहीं था अर्थात् प्रलय के समय की दशा अकथनीय है उस में कुछ कहना बन नहीं सकता।

प्रश्न—इस पर कोई संदेह कर सकता है कि जब सर्वथा अज्ञेय दशा थी तो मनु आदि महर्षियों ने यह भी क्यों कर जान लिया कि (आसीदिदंतमो भूतं०) यह सब अन्धकारमय था। इत्यादि—

इस का संक्षेप उत्तर यह है कि—योग सूत्र समाधि पाद सू० ४२ पर व्यासभाष्यम्—

यदा पुनः शब्दसंकेतस्मृतिपरिशुद्धौ श्रुतानुमानज्ञान-विकल्पशून्यायां समाधिप्रज्ञायां स्वरूपमात्रेणावस्थितोऽर्थस्तत्स्वरूपाकारमात्रतयैवावच्छिद्यते सा च निर्वितर्का समापत्तिस्तत्परं प्रत्यक्षम्। तच्च श्रुतानुमानयोर्बीजम्। ततः श्रुतानुमाने प्रभवतः। नच श्रुतानुमानज्ञानसहभूतं तद्दर्शनम्॥

भा०—जब कि शब्द के संकेत (कि अमुक वाच्य वस्तु का वाचक यह शब्द है) का स्मरण न रहने पर शब्द प्रमाण और अनुमान प्रमाण के ज्ञान के विकल्प [गौः यह ग्—औ, विसर्ग रूप शब्द, गौः ऐसा ही अर्थ नाम वाच्य और गौः ऐसा ही ज्ञान है। सो यह प्रत्येक गौ आदि, शब्द, अर्थ, ज्ञान इन तीन दशा में विकल्पित है] से शून्य समाधिरूप बुद्धि में अपने स्वरूपमात्र से अवस्थित गौ आदि वाच्यार्थ वस्तु उस अपने स्वरूप के आकार मात्र भाव से ही अवच्छिन्न नाम पृथक् साक्षात् प्रतीत होता—इस का नाम निर्वितर्का समापत्ति है। यही पर नाम अन्तिम सीमा का प्रत्यक्ष है। अर्थात् सर्वोपरि प्रत्यक्ष नाम साक्षात्कार होने की सीमा यही है। इस लिये यही साक्षात्कार प्रत्यक्ष

वेदादि शब्दप्रमाण और अनुमान प्रमाण का बीज नाम मूल कारण है इसी निर्वितर्कासमापत्ति से वेदादि शब्द प्रमाण और अनुमान उत्पन्न होते हैं क्योंकि शब्द और अनुमान का ज्ञान उस साक्षात्कार रूप प्रत्यक्ष के साथ में नहीं रहता है। अथवा यों कहो कि बीजरूप से रहता है। अभिप्राय यह निकला कि सर्गारम्भ में यही साक्षात्कारवती योगबुद्धि ब्रह्मा नामरूप वाले परमात्मा में होती है इसी से वेदादि प्रकट होते हैं। इसी योग बुद्धि से महर्षियों ने सूक्ष्म परोक्ष विषयों को साक्षात् जान २ कर दर्शनशास्त्र तथा मनु आदि धर्मशास्त्र और इतिहास पुराणादि बनाये हैं, इसलिये प्रलय दशा लोकसिद्ध प्रत्यक्षादि प्रमाणों से अवश्य अज्ञेय है, पर योग बल से उस की यथार्थ हालत महर्षि लोग जान लेते थे मनु जी ने पांचवें श्लोक से प्रलय की हालत कह कर ६। ७ श्लोकों में परमात्मा का साकार प्रादुर्भाव दिखाया है। यहां तक अद्वैत है इस से आगे द्वैत का आरम्भ होता है। यह प्रत्यक्ष चराचर सब संसार स्त्री पुरुष दो भाग में सर्वत्र ही विभक्त दीखता है। महाप्रलय के पश्चात् होने वाली सृष्टि में माया वा प्रकृति नामक द्वैत कल्पना का आरम्भ मनु जी ने अ० १ के आठवें श्लोक से अप् शब्द द्वारा ही किया है यह द्वैत कल्पना वास्तव में स्त्री से ही आरम्भ होती है इसी कारण बृहदारण्यक श्रुतिमें-

तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्।

ब्रह्मादि नाम रूप से सर्गारम्भ में प्रकट हुआ परमात्मा प्रथम एकाकी अद्वैत था उस अद्वैत दशा में रमण नहीं कर सका इसी कारण अब भी कोई अकेला पुरुष विना स्त्री के रमण नहीं कर सकता। सो स्वाभाविक रमण की इच्छा [जिस को अन्य शब्दों से सृष्टि करने की इच्छा भी कह सकते हैं] हुई। सृष्टि के आरम्भ में दिव्य देहधारी प्रजापति परमात्मा में जो २ कृत्य जैसा २ होता है वही नियम आगे २ मनुष्यादि प्राणियों में चला करता है। इस का असली हेतु यह है कि जो गुण किसी बड़े कारण वस्तु में जैसा २ होता है वह वैसा २ ही उस के छोटे २ कार्यांशों में भी आया करता है। समष्टिरूप पृथिवी तत्त्व में जो गुण हैं वेही उस के कार्य घट पटादि पदार्थों में भी दीखते हैं। महान् प्रज्वलित अग्नि पुञ्ज में जो बड़ा प्रकाश तथा बड़ी गर्मी है वैसे ही अग्नि की छोटी २ चिनगारियों में भी अल्प प्रकाश और गर्मी विद्यमान हैं। इसीके अनुसार दैवीशक्ति रूप प्रकृति वा मायारूप स्त्री के विना प्रजापति परमात्मा जैसे रमण नहीं कर सका वैसे ही उसके अंशरूप जीव पुरुष

मनुष्यादि भी मायांशरूप अपनी २ सजातीय स्त्री के विना अब भी रमण नहीं कर सकते और द्वितीय स्त्री की इच्छा करते हैं। पाठक महाशय लोग यह न समझिये कि सम्पादक प्रकरण को भूल कर कुछ और ही व्याख्यान लिखने लगे किन्तु हमने यह ऊपर का विचार मनु जी का वेदानुकूल गूढाशय दिखाने के लिये लिखा तथा दिखाया है। अभिप्राय यह है कि अ० १ के ८वें श्लोक में कारण रूप जल तत्त्व की सृष्टि मनु जी ने कही है। और (तासुबीजमवासृजत्) इस वाक्य से यह दिखाया है कि उस सूक्ष्म कारण रूप जल तत्त्व [जो स्त्री शक्ति प्रधान था] में चेतन पुरुष शक्ति का अंश रूप बीज बोया। तब स्त्री पुरुष के संयोग से सृष्टि जैसे आरम्भ में चली वैसे ही अब भी सर्वत्र यही सृष्टि का क्रम चलता है। जहां संकल्प मात्र से मानसी सृष्टि में सन्तानादि होते हैं वहां भी सूक्ष्म कारण रूप स्त्री पुरुष का संयोग अपेक्षित है। यह नियम है कि जिस आधार में बीज बोया जाय वही स्त्री है क्योंकि (क्षेत्रभूता-स्मृतानारी) मनु जी कहते हैं कि जो बीज बोने उगने के लिये खेत रूप है वही स्त्री और (बीजभूतःस्मृतःपुमान्) जो बीज नाम रूप अंश है वही पुरुष है। इसी नियम के अनुसार जिस सूक्ष्म अप्तत्त्व में बीज बोया गया वह अप् सूक्ष्म स्त्री तत्त्व सिद्ध है और जो बीज था उस का पुरुषांश होना सिद्ध है। खेती में भी खेत रूप पृथिवी स्त्री और अन्न के दाने पुरुषांश रूप बीज है। ऐसा ही सर्वत्र जानो। संसार भर की सभी प्रकार की सूक्ष्म स्थूल स्त्री शक्ति जलतत्त्व प्रधान होने से ही पुरुष की अपेक्षा कोमल होती है। और पुरुषांश सर्वत्र अग्नि तत्त्व प्रधान होने से कठोर होता है। इसी विचार को मन में रख के चाणक्य में यह कहा है कि—

घृतकुम्भसमानारी तप्ताङ्गारसमःपुमान्।

सारांश यह निकला कि मनुस्मृति के अ० १ श्लोक ८वें (अपएवससर्जादौ) में अप् शब्द का अर्थ यह जल नहीं है कि जिस को लोक में जल कहते मानते हैं किन्तु वहां अप् शब्द से सूक्ष्म कारण रूप जल अपेक्षित है और मनु अ० १ के ७८ वें श्लोक—

ज्योतिषश्चविकुर्वाणादापोरसगुणाःस्मृताः।

में इसी प्रत्यक्ष स्थूल जल की उत्पत्ति दिखायी है इस कारण मनु जी के धर्मशास्त्र में लेशमात्र भी परस्पर विरोध नहीं है। गोस्वामी जी ने धर्मशास्त्रों

का वेदानुकूल गूढ़ अभिप्राय नहीं समझा इस से यह उन की समझ का ही ही दोष है ॥ आगे—

गोस्वा०—लोकानांतुविवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणंक्षत्रियंवैश्यं शूद्रंचनिरवर्त्तयत् ॥ मनु० अ० १ श्लोक ३१

अर्थ—लोकों की वृद्धि के अर्थ मुख, बाहु, ऊरु, पाद से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों को उत्पन्न किया यहां तो ब्रह्मा के मुख, बाहू, ऊरू, पादों से चातुर्वर्ण्य की सृष्टि लिखी है । और आगे इसी अध्याय के ३३ श्लोक में लिखाहै—

तंमांवित्तास्यसर्वस्य स्रष्टारंद्विजसत्तमाः ! ॥

अर्थ विराट से उत्पन्न इस सब जगत् का स्रष्टा तुम मुझे जानो । जो ब्राह्मणादिक प्रथम हो चुके हैं तब तुम सब के स्रष्टा कहां भये और जो तुम ही ने चातुर्वर्ण्य को सृजा तो ब्रह्मा के मुख बाहू ऊरू पाद से उत्पन्न होना असत्यहै ।

समाधान—पूर्वोक्त लेख में असत्य कुछ नहीं है । गोस्वामी की समझ का दोष है । वास्तव में ब्राह्मणादि सब मनुष्य पदवाच्य कहाते हैं । और जैसे आदम से पेदा होने वाले आदमी कहातेहैं वैसे ही मनुसे पैदा होने वाले मनुष्य वा मानव कहाते हैं इसी विचार का साधक (मनोर्जातावञ्यतौषुक्च) यह पाणिनीय व्याकरण का सूत्र है । यदि कोई कहे कि (ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मणः) इस निर्वचन से ब्राह्मण ब्रह्मा के सन्तान कहाते हैं । और महाभारतादि के लेखानुसार ब्राह्मण ही गुण कर्मादि के परिवर्त्तन से क्षत्रियादि पदवाच्य हो गये । और (ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्०) इत्यादि वेद मन्त्र में विराट् पुरुष से ब्राह्मणादि की सृष्टि दिखायी है । तो ब्रह्मा, विराट् और मनु तीन से ब्राह्मणादि की सृष्टि होने के प्रमाण वेदादि शास्त्रों में हुए तब इन तीन में से कौन सी बात सत्य मानी जावे? । पाठक महाशय! शोचिये हमारे गोस्वामी तो ब्राह्मणादि की रचना दोही से दिखाते थे परन्तु यहां तीन निकले । सो तीन पर भी यह बात निर्भर नहीं रहेगी किन्तु इन्हीं श्रुतिस्मृति पुराणादि ग्रन्थों से शिव जी, गणेश जी, जगन्माता देवी जी, विष्णु भगवान् और सूर्य नारायण इत्यादि अनेक देवताओं के लिये सृष्टि की रचना, पालन और प्रलय करने के अनेक प्रमाण मिलेंगे । तब तो यह बात और अधिक संदेह ग्रस्त होगयी कि अब इस संसार की उत्पत्ति स्थिति प्रलय कर्त्ता इन सब में से किस को मानें ? । सो यह बात हमारे कहने मात्र से नहीं मान लेनी चा-

हिये किन्तु ऋग्वेदसंहितामण्डल १० सू० १२५ वागम्भृणीसूक्त में वागम्भृणी देवी स्वयं कहती है –

अहं सुवे पितरमस्यमूर्धन् ॥

इस विराट् रूप के ऊपरी मूर्धाभाग में पृथिव्यादिस्थ चराचर के रक्षक पिता नाम द्युलोक को वा सूर्यलोक को मैंने बनाया अर्थात् उत्पन्न किया है। इस प्रकार वेदादि के अनेक प्रमाणों से देवी का सृष्टिकर्त्री होना सिद्ध है। तथा (पितासिलोकस्यचराचरस्य–गीता० अ० ११) इत्यादि अनेक प्रमाणों से विष्णुभगवान् का सृष्टिकर्त्ता होना भी सिद्ध है इस से पूर्वोक्त शंका और भी पुष्ट होती है। इस शंका को पुष्ट करदेने से हमारा प्रयोजन यह है कि ऐसी शंका गोस्वामी जी ने केवल मनुस्मृति को लेकर यद्यपि की है तथापि जिन २ पाठक महाशयों को सृष्टि विषय में अनेक सृष्टिकर्त्ता होने की शंका अबतक हुई हो वा आगे होनेवाली हो उन सबके लिये यही आगे किया समाधान पुष्कल समझा जावे। इसलिये हम अब अच्छा युक्तियुक्त समाधान लिखते हैं। इस समाधानमें एकरीति तो यह है कि व्याकरण महाभाष्य-

यश्च द्वयोः षष्ठोनिर्दिष्टयोः सम्बन्धे भवति शक्यते स तयोरन्यतरेण व्यपदेष्टुम्। तद्यथा देवदत्तस्य पुत्रो देवदत्तायाः पुत्र इति ॥

भावार्थः–जो पदार्थ दो आदि कई कारणों से पैदा होता है उसको उन कारणों में से चाहे जिस का कार्य कह सकते हैं जिस का कारण कहें वही सत्य होगा। और सब का कहें तो भी सत्य होगा। जैसे यह देवदत्त का पुत्र है ऐसा तो प्रायः कहते ही हैं परन्तु देवदत्त की पत्नीके माता पितादि अपनी लड़कीका पुत्र कहते मानते हैं ये दोनोंही सत्य हैं। हमारे गोस्वामी भी अपने माता पिता दोनों ही के पुत्र मानेजाते हैं। इसी के अनुसार काल, कर्म, कर्त्ता और माया वा प्रकृति आदि अनेक सृष्टि के निमित्तोपादानादि हैं। उन में से जिस से सृष्टि हुई कहें वह सभी ठीक और सत्य ठहरेगा। द्वितीय रीति यह है कि संप्रति बृटिशगवर्नमेण्ट ने रेल तार आदि अनेक अद्भुत काम अपने और प्रजा के हित वा सुख के लिये किये हैं और अस्पताल मदर्सा स्कूल आदि अनेक काम प्रजा के हितार्थ भी किये हैं। वा यों

कही कि राजा ने ये काम किये हैं। अथवा दुर्भिक्ष से प्रजा के मनुष्यों को पीडित होते देख कर किसी २ जिले में दुःखित मनुष्यों को अन्न धनादि कुछ दियागया तब उस काम के कर्त्ता अनेक कहेजाते हैं कि लाट साहब के हुक्म से जो काम हुआ तो उन्हों ने यह बहुत अच्छा काम किया फिर जिन २ हुक्कामों के पास हो २ कर वह हुक्म तामील किया गया वे सभी उस काम के कर्त्ता माने गये। जिलाधीश कलक्टर भी एक कर्त्ता उस काम के मानेगये फिर आगे २ डिपटी तहसीलदारादि भी उस के कर्त्ता बने। और विलायत बैठी विक्टोरिया महारानी तथा सप्तम ऐडवर्ड भी उस २ कामके कर्त्ता हुए। जैसे ये सब कर्त्ता ठीक हैं वैसे ही साक्षात् परमात्मा, ब्रह्माजी, विराट् पुरुष, तथा मनु आदि जो २ श्रुति स्मृति पुराणादि ग्रन्थों में ब्राह्मणादि सृष्टि के कर्त्ता लिखे हैं वे सभी ठीक हैं। क्योंकि जिस की इच्छामात्र वा स्वाभाविक ज्ञान बल और क्रियारूप प्रेरणा से ब्रह्मा जी आदि सृष्टि करते हैं वह भी सृष्टिकर्त्ता है और वे ब्रह्मादि तो स्वयं करते ही हैं। घर आदि एक ही महकमा में जो २ काम होते हैं उन कामों के कर्त्ता उस महकमा के सभी लोग माने जाते हैं। ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं।

तथा एक रीति यह भी है कि बिनौला, कपास, रुई, सूत इन सभी के वस्त्रादि कहे माने जावेंगे। क्योंकि बिनौले में जो २ अंश थे वेही कपास में रुई में सूत में और वस्त्रों में अपने स्वरूप से ज्यों के त्यों विद्यमान रहते हैं जिन को सूक्ष्मदर्शी परीक्षक तत्त्ववेत्ता लोग सूक्ष्म विचारसे ठीक २ देखते जानते हैं। कि एक ही वस्तु के अनेक नामरूप हो जाने पर भी वह वस्तु एक ही है। इसी के अनुसार ब्रह्मा, विराट् और मनु इन तीनों में कपास, रुई, सूत का सा नाम मात्र ही कहने के लिये भेद है वास्तव में तीनों एक ही वस्तु हैं। तब जो काम कपाससे हुआ वही रुई सूत सभी से हुआ और जो रुई तथा सूत से हुआ वही कपाससे हुआ मानने पड़ेगा क्योंकि उसमें वह और उस में वह दोनों में दोनों विद्यमान हैं इस से दोनों एक ही हैं। इसी के अनुसार जहां ब्रह्मा जी से ब्राह्मणादि की सृष्टि कही है वहां विराट् तथा मनु नाम रूप में आये ब्रह्मा जी से ब्राह्मणादि प्रकट हुए ऐसा ही कहना मानना ठीक होगा। क्योंकि (कार्पासमुपवीतं स्यात्०) इत्यादि धर्मशास्त्र के वाक्यों में यही अर्थ होगा कि सूत नाम रूप में आयी कपास का जनेऊ ब्राह्मण का होना चाहिये। क्योंकि साक्षात् कपास से जनेऊ बन ही नहीं सकता। इसी के अनुसार मनु नाम रूप में आये ब्रह्मा जी ने वा परमात्मा

ने ब्राह्मणादि सब संसार को बनाया है। ऐसा मानने से कोई दोष नहीं है।

गोस्वामी—अहंप्रजाःसिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वासुदुश्चरम्।
पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितोदश॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यंपुलहंक्रतुम्।
प्रचेतसंवसिष्ठंच भृगुंनारदमेवच॥ मनु०अ०१।३४।३५॥

अर्थ—मैंने प्रजा को सृजने की इच्छा कर दुश्चर तप कर, प्रजा के पति दश महर्षियों को आदि में उत्पन्न किया मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेतस, वसिष्ठ, भृगु और नारद। मनुने दशो महर्षियों को अपना पुत्र लिखा है। यह मनु का वचन वेद विरुद्ध है। देखिये ऋग्वेद मण्डल ९ सूक्त ६५ में भृगु को वरुण का पुत्र लिखा है।

यजुर्वेद में भी शतपथ ब्राह्मण ११ काण्ड ३—प्रपा० ४ ब्राह्मण कं० १ में

"भृगुर्ह वै वारुणिर्वरुणं पितरं विद्ययाऽतिमेने"

अर्थ—वरुण के पुत्र भृगु ने अपने पिता को विद्या से अतिमान किया। यहां भी भृगु को वरुण का पुत्र लिखा है। इन दो वचनों से यह मनुस्मृति का वचन विरुद्ध है॥

समाधान—वेद से मनुस्मृति का कुछ भी विरोध नहीं है। सत्य बात तो यही है कि मनुस्मृतिकी सर्वोपरि प्रशंसा इसीलिये है कि अन्य सब स्मृतियों की अपेक्षा मनुस्मृति ही सर्वोपरि वेदानुकूल है—

वेदार्थोपनिबन्धृत्वात्प्राधान्यंहिमनोःस्मृतम्।

अर्थात् मनु के शास्त्र के प्रधान होने में वेद के अर्थ का उस में सहयोग होना ही मूल कारण है। हम कई अवसरों पर लिख चुके हैं कि वेद का गम्भीर आशय जानने के लिये मनुष्यको प्रथम कुछ विचार करलेना चाहिये। अर्थात् अध्यात्म, आधिदैविक, आधिभौतिक इन तीन अंशों को लेकर वेदादि शास्त्रों की प्रवृत्ति है। कर्मकाण्ड वेद भाग में आधिदैविक प्रधान है अर्थात् आधिदैविक अंश को लेकर वेद विशेष कर चलता है। जो पदार्थ जिस २ नाम रूप का अध्यात्म में है वही वैसा ही आधिदैविक में और वह वैसा ही आधिभौतिक में भी है। जैसे शतपथ श्रुति में (वागत्रिः) अध्यात्म में वाणी अत्रि ऋषि है। आधिदैविक में सप्त ऋषियों के सात तारागण हैं। और आधिभौतिक सप्तऋषि प्रत्येक कल्प में मनु जी से प्रकट होते हैं।

ब्रा० स० अं० ८ पृ० ३६० से आगे वे० प्र० का खण्डन ॥

कोई २ लोग यह भी प्रश्न करते हैं कि जब विनियुक्त कर्म के साथ मन्त्रार्थ संघटित होने का नियम है तो (शन्नोदेवी०) मन्त्र में शनैश्चर ग्रह का अर्थ नहीं घटता तो स्मृतियों में उस का विनियोग शनैश्चर में क्यों किया गया है?। इस का मन्त्रार्थ हम यहां न लिख कर वेद के सूक्ष्म गंभीर अभिप्राय को लेकर संक्षेप से सत्य २ समाधान लिखे देते हैं। आशा है कि आर्यसमाजी आदि कुतर्कियों को जवाब देने के लिये पाठकों को पूर्ण सहायता मिलेगी। सो संक्षेप समाधान यह है कि (तिस्रएव देवता इति नैरुक्ताः) अग्नि वायु आदित्य, ये तीन ही वेदोक्त देवता हैं। इन्ही को प्रकारान्तर से ब्रह्मा, विष्णु महेश, नाम रूपों से भी कहा माना जाता है। सो ब्रह्माण्ड भर को भूः, भुवः, स्वः, इन तीन भागों में विभक्त मानकर एक २ के साथ जो २ देवता सम्बद्ध है उस २ को उस २ अग्नि आदि के नाम से मन्तव्य समझिये। इस प्रकार अग्नि, वायु, आदित्य, ये तीनों देवताओं की कोटि समझो अर्थात् पृथिवी, वा भूर्लोक सम्बन्धी प्रत्यक्ष परोक्ष, वा सूक्ष्म स्थूल अधिष्ठानों के अधिष्ठाता सब देवता अग्नि कोटि में होने से अग्नि कहावेंगे। इसी प्रकार भुवर्लोक वा अन्तरिक्ष सम्बन्धी सब देवता वायुपदवाच्य और स्वर्लोक वा द्युलोक सम्बन्धी सब आदित्यपदवाच्य जानो। इस रीति से ग्रह, नक्षत्र, और चन्द्रमादि अन्तरिक्ष लोकस्थ प्रायः अप्तत्त्व प्रधान हैं। इसी कारण चन्द्रमादि में शीतलता विशेष है। इसी लिये वेद में यह स्पष्टतया लिखा गया है कि-

चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसः।

चन्द्रमा गन्धर्व पुरुष और नक्षत्र उस की अप्सरा नाम स्त्रियां हैं। क्योंकि सजातीय ही स्त्री पुरुष हो सकते हैं, किन्तु विजातीय में स्त्री पुरुष भाव संघटित नहीं हो सकता कि जैसे मनुष्य की स्त्री मनुष्य ही होती है, पशु पक्ष्यादि नहीं। इस से चन्द्रमा और नक्षत्रादि का जलतत्त्व प्रधान होना अनेक युक्ति प्रमाणों से सिद्ध है। इसी कारण शनैश्चर नामक तारा जलतत्त्व प्रधान होने से अप् शब्द के द्वारा (शन्नोदेवी०) मन्त्र में शनैश्चर का ग्रहण आचार्यों, वा ऋषियों ने माना है। शनैश्चर का अप् तत्त्व प्रधान होने से ही मन्द नाम है, क्योंकि तैजस वस्तुओं की अपेक्षा जल में स्वाभाविक मन्दता होती है। स्त्री पुरुष का एक लक्षण सूक्ष्मदर्शी लोग यह भी मानते हैं कि जगत में जो भोक्तृ शक्ति है वह पुरुष, और भोग्य शक्ति स्त्री है। सो जहां से स्त्री पुरुष

की द्वैत कल्पना का आरम्भ होता है, वहीं से भोग्य भोक्ता चलते हैं। जैसे माया वा प्रकृति स्त्री भोग्य, और पुरुष भोक्ता है। खाना, पीना, भोजन, ये सब सामान्यार्थ को लेकर एक ही हैं। तदनुसार (आपो भवन्तु पीतये०) का मतलब यह होगा कि तैजस भोक्ता देवों के लिये शनैश्चर नाम रूप वाला जल तत्त्व पीने नाम भोगने के अर्थ हैं, वा हों। अर्थात् स्वभाव से ही सूर्यादि तैजसग्रह चन्द्रमादि आप्य ग्रहों को पीते नाम भोगते हैं। चन्द्रमादिस्थ अमृत को अन्य देवता लोग पीते नाम भोगते हैं यह बात वेद में स्पष्ट रूप से मिलती है। इस प्रकार जल देवता वाले (शन्नोदेवी०) मन्त्र में शनैश्चर ग्रह का अर्थ होना युक्ति प्रमाण दोनों से सिद्ध है।

इसी के अनुसार (उद्बुध्यस्वाग्ने०) इत्यादि मन्त्र बुध आदि ग्रहों के प्रतिपादक माने जावेंगे। यदि यह शंका हो कि ग्रह नक्षत्रों को अभी तुम ने जलतत्त्व प्रधान लिखा तब बुध ग्रह का वर्णन अग्नि देवता के नाम से क्योंकर ठीक है ? तो उत्तर यह होगा कि जैसे पृथिवी में से निकलने वाले सभी पदार्थ पृथिवी तत्त्व प्रधान हैं, यह औत्सर्गिक सामान्य नियम है परन्तु नैयायिकादि लोगों ने सुवर्ण को निर्विकल्प आग्नेय तैजस माना है यह सामान्य उत्सर्ग नियम का अपवाद है। तब अग्नि पद से वेद में सुवर्ण का वर्णन जैसे आ सकता है, वैसे ही ग्रह, नक्षत्रादि अन्तरिक्षस्थ लोकों के सामान्य कर जलतत्त्व प्रधान होने पर भी कोई २ बुध आदि ग्रह अग्नि आदि तत्त्व प्रधान हैं यह भी अपवाद है और अपवाद स्वांश में ही बाधक होने से अन्यत्र सामान्य नियम ही ठीक माना जाता है। इस लिये कोई दोष नहीं आता है। वेदार्थ समझने के लिये ऋषि आचार्यों के सूक्ष्म गूढ़ विचारों का ध्यान रखना चाहिये ॥

इस से आगे वे० प्र० के उस अङ्क में कोई शास्त्रीय विषय नहीं था। गाली गुप्तादि कठोर वाद का उत्तर देना हमारा काम नहीं है।

आ० समाजी लोग भी सभी हठी तथा मिथ्याप्रिय नहीं हैं, किन्तु अनेक लोग वे० प्र० के मिथ्या गपोड़ों को वैसा ही जानते मानते हैं। परन्तु आ० समाज में मूर्ख मण्डली बहुत है, उस में तु० रा० का नगद नारायण संबन्धी मुख्य उद्देश्य सिद्ध होता जाता है। और हमारा असली उद्देश भी (कि हम निष्पक्ष रहते हुए वेदादि शास्त्रों का सत्य सनातन गंभीर गौरव वर्द्धक सिद्धान्त जगत् में प्रकाशित करदें) क्रमशः सिद्ध हो रहा है। जब हम सभी अंशों

में युक्ति प्रमाण सिद्ध सत्य सिद्धान्त लिख देते हैं तब भी वे० प्र० के अनुचर छु० ला० आदि लोग (जो परीक्षित् गढ़ आदि में अपने मूर्ख यजमानों के यहां सत्यनारायण कथादि बांचते श्राद्धादि भी करते कराते हैं) इधर आ० समाज में भी स्वार्थ सिद्धि के लिये एक टांग अड़ाते ही हैं। उन लोगों का विचार तो यह है कि हमें कुछ कहना लिखना चाहिये कि जिस से कोई यह न समझे कि चुप हो गये।

हमने स्त्रियों के वेदाधिकार पर शास्त्रानुकूल सिद्धान्त की बात लिख दी थी कि स्त्री को वेदाधिकार नहीं, इस अभिप्राय वाले शास्त्रों का आशय यह है कि द्विज पुरुषों को जैसे उपनयन संस्कार करके गुरु कुल वास करते हुए वेद पढ़ने का अधिकार नियत किया है वैसे स्त्रियों को नहीं है। न यज्ञोपवीत का विधान है और न पति से भिन्न, अन्य कोई भी पुरुष स्त्रियों का गुरु, वा अध्यापक हो सकता है (इसी लिये 'पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्') यह सर्व शास्त्र सम्मत अटल सिद्धान्त है।

इसी से वैष्णव सम्प्रदायादि के कोई २ लोग जो अन्यों की स्त्रियों को चेली बनाते तथा स्वयं गुरु बनते हैं, यह रीति भी वेदादि शास्त्र से विरुद्ध और घृणास्पद त्याज्य है। बाल्यावस्था में कन्या को पिता कुछ उपयोगी विषय पढ़ा सकता है। विवाह संस्कार स्त्रियों को द्विजत्व संपादन कराने वाला है, उस के बाद में पति जो चाहे तो स्वयं अपनी पत्नी को पढ़ा सकता है, परन्तु वेद का वह अंश द्विज स्त्री को यज्ञ में सम्मिलित होने की दशा में पढ़ा सकता है कि जो पत्नी को पढ़ने के लिये कहा है। अर्थात् पत्नी यज्ञ में जिन २ मन्त्रों से काम करती है उन को स्वयं पढे तो दोष नहीं, किन्तु अच्छा है। द्विज स्त्रियों से भिन्न, शूद्रा स्त्री को सर्वथा ही वेदाधिकार नहीं है। ऐसे स्पष्ट सिद्धान्त पर भी वे० प्र० कुछ न कुछ मन माना लिखा ही करता है। सो उस की आदत ही है कि व्यर्थ भी कुछ न लिखा करे तो करे ही क्या ?।

पद्म पुराण के २१ विवाहों पर भी स्पष्ट समाधान पहिले ही ब्रा० स० में लिख दिया गया था कि (विवाहयज्ञे सम्प्राप्ते तथा म्रियते लग्नकालतः) इत्यादि लेख साफ २ हैं कि विवाह का अवसर आते ही लग्न काल से पहिले ही वर मरते गये। और यह कहीं भी लिखा नहीं कि सप्तपदी होने पर पति मरे हों तब (कन्यां ददौ) इत्यादि तथा (विवाहो जायते राजन्) इत्यादि का अर्थ वाग्दान में भी घट जाता है। वाणी मात्र से देना भी कन्या का देना

है और वह भी विवाह कहावेगा। और कोई हठ ही करे कि संकल्प पूर्वक दान कर देने पर ही कोई २ वर मर गया तब भी सप्तपदी होने से पूर्व मर जाने पर अन्य विवाह हो सकता है।, क्योंकि मनु जी लिखते हैं कि-

पाणिग्रहणिकामन्त्रा नियतंदारलक्षणम् ।
तेषांनिष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिःसप्तमेपदे ॥ अ० ८ ॥

विवाह सम्बन्धी वेद के मन्त्र ही पति पत्नी भाव नियत हो जाने के नियामक हैं, उन मन्त्रों की समाप्ति वा अवधि सप्तम पग धरने पर हो जाती है। उस के बाद द्विज स्त्री का विवाह अन्य पुरुष से करना शास्त्र विरुद्ध है इस लिये ऐसे अंशों पर बार २ लिखना व्यर्थ है।

आगे वे० प्र० के ११। १८ पृष्ठों में राजा बलि के पांच पुत्रों की कथा लिखी है कि राजा बलि ने अपनी रानी को दीर्घतमा ऋषि के समीप भेज कर पांच पुत्र उत्पन्न कराये। तब सनातन धर्मी लोग नियोग को बुरा क्यों मानते हैं?। इस का संक्षेप समाधान यह है कि प्रथमतो वायु पुराण के उन वचनों में यह नहीं लिखा कि शूद्र स्त्री के साथ वा बलि की रानी के साथ दीर्घतमा ऋषि ने समागम कियाथा क्योंकि अन्धे होने पर भी उन्होंने शूद्राको जान लिया तब ऐसे ज्ञानी संकल्पमात्र से भी सन्तान पैदा कर सकते, वरदान दे सकते हैं। क्यों कि दीर्घतमा कामी होते तो अन्य के मन की बात कैसे जान लेते?। इस दशा में वायु पुराण से नियोग सिद्ध होता ही नहीं। और कोई हठ ही करे कि समागम से ही पैदाहुए थे, तो यह नियोग वा पुनर्विवाह का अधिक चाव आर्यसमाजियों को है कि पति के विद्यमान होने पर भी अपनी २ स्त्रियों को नियोग कराना चाहिये इस लिये वे लोग अपने लिखे अनुसार किसी अन्धे, वा काने ब्राह्मणों के पास अपने २ घर की स्त्रियों को भेजा करें और अन्यों से पैदा कराने की रीति का प्रचार करें। रहा सनातन धर्मियों का विचार सो वे लोग तो अपना सिद्धान्त अटल कर चुके हैं कि—

नान्यस्मिन्विधवानारी नियोक्तव्याद्विजातिभिः ।
अन्यस्मिन्हिनियुञ्जाना धर्मंहन्युःसनातनम् ॥ अ० ९

सनातन धर्म के आदि पुरुष मनु जी अपने धर्मशास्त्र में आज्ञा देते हैं कि द्विज लोग अपने कुल की विधवा स्त्री को विवाहित से भिन्न पुरुष के साथ कदापि नियुक्त न करें क्योंकि ऐसा करनेसे सनातनधर्म नष्टहो जायगा।

अब रहे पुराणों के दृष्टान्त सो वहां यह नहीं लिखा कि राजा बलि आदि ने जैसा किया वैसा ही आगे २ सब लोग किया करें किन्तु पुराण इतिहासों का विषय ही लोकवृत्त है। राजा वा ऋषि आदि के जो २ वृत्तान्त जैसे २ हुए वैसे लिख दिये हैं। किस काम को किस प्रकार करें इसी विचार के लिये धर्मशास्त्र बने हैं। इस कारण विशेष कर धर्मशास्त्रों पर सनातन धर्म की व्यवस्था निर्भर है।

वे० प्र० पृ० १५२ में महाभारत भीष्म पर्व अ० ४३

का पता देकर ये श्लोक लिखे हैं कि—

षट्शतानिसविंशानि श्लोकानांप्राहकेशवः।
अर्जुनःसप्तपञ्चाशत् सप्तषष्टिं तु सञ्जयः।
धृतराष्ट्रःश्लोकमेकं गीतायामानमुच्यते॥

इस डेढ़ श्लोक में लिखी गणना से भगवद्गीता के श्लोकों की संख्या ७४५ होनी चाहिये। और सांप्रतिक गीता में ७०० ही श्लोक हैं। इस में ४८ श्लोक तो कृष्ण के कहे में घटे, अर्जुन के २९ बढ़ गये, और संजय के २६ घटे हैं; इस से १०३ श्लोकों में गड़बड़ हो गया है। न जाने दूसरे कितने श्लोकों में फेरफार हो गया होगा।

यह लेख किसी एक आ० समाजी का है कि जिससे गीतामें भी साधारण लोगों को शंका हो जावे। श्रद्धा न रहे। क्योंकि आर्यसमाज के मूलसिद्धान्त का निचोड़ यह निकलता है कि सब बातों में कुतर्क कर दो, किसी भी धर्मांश पर किसी की श्रद्धा न रहे। सो यह इन की धूर्त्तता है। कलकत्ते के छपे महाभारत में हमने देखा हमारे पास जो पुस्तक है, उस के ४३ वें अध्याय में यह १॥ डेढ़ श्लोक ही नहीं है। सम्भव है कि किसी समाजियों केसे विचार वाले मनुष्य ने गीता में सन्देह डालने के लिये ही यह डेढ़ श्लोक बना कर ४३ वें अध्याय में मिला दिया हो। इस बात का विशेष निश्चय आदि पर्व में लिखी प्रत्येक पर्व की श्लोक संख्या का मिलान करने से हो जायगा। सो हम उस का मिलान करके अगले अंक में स्पष्ट विचार प्रकाशित करदेंगे। अभी हमने अनुमान मात्र अपनी राय लिखी है। इस से इस में कुछ त्रुटि होगी तो वह ठीक हो जायगी। अब आर्यसमाजी लोग विद्यमान गीता को ही ठीक२ नहीं मानते, अवतार मूर्त्तिपूजादि गीता से सिद्ध हैं, उन का खण्डन

करते पोपलीला कहते हैं, तब ४५ श्लोक और भी बढ़ जाते तो क्या समाजी लोग मान लेते ? । जब दोनों दशा में मान नहीं सकते, तब कम बढ़ होने का झगड़ा उठाना सर्वथा निरर्थक है ॥

वे० प्र० पृष्ठ १५३ से १५८ तक एक देवता विषयक लेख छपा है। यह लेख जगन्मोहन वर्मा का लिखा देख कर हमे बड़ा आश्चर्य हुआ। हमारे पाठकों ने जगन्मोहन के जो २ लेख ब्रा० स० में छप चुके हैं, देखे होंगे। यद्यपि जगन्मोहन का वह लेख बड़ा ५॥ पृष्ठ है । तथापि उसका पूर्ण उत्तर देने और विशेषता के साथ प्रबल खण्डन करने के लिये हम यहां ज्यों का त्यों पूरा अनुवाद छापते हैं, उसका संक्षेप लिखने से पाठकों को पूरा२ पूर्व पक्ष देखने में नहीं आता, इससे पाठकलोग जगन्मोहनके सब लेखका छापना बुरा न समझें-

ओ३म्

देवता और ब्राह्मणसर्वस्व

सम्पादक ब्राह्मणसर्वस्व जब आर्यसमाज से पृथक् हुये थे और तटस्थ रहकर वैदिकसिद्धान्तों पर विचार करनेका संकल्प किया था उस समय मैंने समझा था कि अब भारत के उन्नति के दिन आने वाले हैं, क्योंकि यद्यपि श्राद्धादि कई अंशों में सामाजिक सिद्धान्त से आप विरुद्ध हैं, फिर भी वैदिक ग्रन्थों के अभ्यासी विद्वान् हैं, जो कुछ विचार करेंगे, पक्षपातरहित ही होकर करेंगे। पर मेरा अनुमान व्यर्थ निकला। ज्यों २ दिन बीतते गये, त्यों २ अधः पतन होता गया, विशेष कर धर्मसभा के मेल से, और अब तो ब्राह्मणसर्वस्व पौराणिक गन्ध से इतना दूषित है कि यदि ब्राह्मणसर्वस्व को आर्यसिद्धान्त से मिलाया जावे तो यह प्रतीत नहीं हो सकता कि यह दोनों पत्र एक ही सम्पादक के सम्पादित हैं। कहां आर्यसिद्धान्त का त्रयी-विद्या का लेख जिस में सामश्रमी जैसे धुरन्धर विद्वान् के लेखों की समालोचना हुई, कहां ब्राह्मणसर्वस्व के लेख, जिस में इतिहास, पुराण तक को स्वतः प्रमाण या ईश्वर का विश्वास माना है। पर सत्य है, संसर्ग दोष बड़ा प्रबल होता है, जब भीष्म जैसे महानुभाव दुर्योधन के संसर्ग से द्रौपदी के चीरहरण समय बैठे देखा किये और दुःशासन को रोक न सके तो इदानीन्तनों की क्या कथा ॥

आज मुझे ब्राह्मणसर्वस्व में भा० ४ । ७ के पृ० ३०८ से ३१० तक कुछ देवता पर विचार देख कर अत्यन्त विस्मय और अचम्भा ज्ञात होता है और मैं उकताया सा हूं कि क्या यह सम्पादक जी का लेख है अथवा अन्य ब्रह्म

देवादिकों का इस में कुछ निरुक्त अ० ७ पाद २ खण्ड ६ से उद्धृत है जिसका नीचे भाषानुवाद है। जिस का आशय यह है कि इन्द्र के बड़े २ बाहु हैं। इन्द्र तीनों लोकों को मुट्ठी में पकड़े है। इन्द्र दो घोड़ों के रथ पर बैठता है। उस के घर में सोना है और उस की स्त्री कल्याणकारिणी है। इन्द्र सोमादि के प्रस्थित रसों को खाता है। उसके कान विना रोक टोक के सर्वत्र सुन सकते हैं इत्यादि ॥

मैं इस विषय पर सब से पहिले सामश्रमी जी की सम्मति को लिखता हूं तत्पश्चात् कुछ थोड़ा सा और लिख कर पाठकों के विचार पर इस विषय को छोड़ूंगा ॥

नन्वेवमिन्द्रादिदैवतमन्त्रेषु बहुत्रैव यत् तेषां पुरुषाकारविग्रहवत्त्वम्, हिताहितविवेकलक्षणचेतनावत्पुरुषव्यवहार्यद्रव्यान्वितत्वम्, तादृशकर्मकर्तृत्वं च गम्यते, तत्कथमुपपद्यते ? इति चेदत्र निरुक्तकारो यास्कएवात्र दत्तोत्तरः। तथाहि "अपुरुषविद्याःस्युरित्यपरमपितु यद्दृश्यतेऽपुरुषविधम्। तद्यथा–अग्निर्वायुरादित्यः पृथिवीचन्द्रमा इति"–इति। तथा चैषामग्न्यादीनां पुरुषाकारविग्रहवत्त्वं प्रत्यक्षविरोधान्नेत्येव सिद्धान्तितम्। तदेवं मन्त्रेषु यदेषां पुरुषविधत्वमुपलभ्यते, तत्काल्पनिकमेवेति। अथ चेतनावत्त्ववर्णनं च तेषां तथैवेत्याह–"अचेतनान्यप्येवं स्तूयन्ते यथाक्षप्रभृतीन्योषधिपर्यन्तानि" इति अथायुधादिद्रव्यान्वितत्वश्रवणमपि तेषां तथैवेत्याह–एतदपि तादृशमेव "सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनम्" इति नदीस्तुतिः–इति। तथा कर्मकर्तृत्वमपि तेषां तथैवेत्याह–" एतदपि तादृशमेव–होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशत" इति ग्रावस्तुतिः–इति" ॥

इस से स्पष्ट प्रतीत होताहै कि निरुक्तकार का ऐसा कभी सिद्धान्त नहीं था, और यह सम्भव है कि महामुनि यास्क के समय अनार्यों में ऐसा सिद्धान्त रहा हो कि देवता पुरुषाकार होते हैं, जैसा अब भी गोंड सन्थालादि अनार्य

दस्युओं का है, और इस लिये कि वैदिकों के भी सिद्धान्त इस से स्पष्ट होकर दुर्गन्धित न हों, यह शोचकर महात्मा आचार्य ने इस को पूर्वपक्ष में लिया है, जिसे ब्राह्मणसर्वस्व में उद्धृत करके यह सिद्धान्त करने का साहस किया गया है कि येनकेन प्रकारेण पुराण के गप्प और असम्भव कथायें वेदानुकूल सिद्ध होजावें। वास्तव में वहां ही ७ खण्ड में इस का उत्तर पक्ष है जिस को अनुमान होता है कि जान बूझकर छिपाया है। अब हम यहां यह दिखलाते हैं कि-"यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरित्ते" इसका व्याख्यान स्वयं भगवान्यास्क ने निरुक्त अ० ६ ख० १ में इस प्रकार मुष्टि की व्याख्या करते कहा है:-

मुष्टिर्मोचनाद्वा मोषणाद्वा मोहनाद्वा-इमेचिदिन्द्ररोदसी अपारे यत्सङ्गृभ्णा मघवन्काशिरित्ते-इमेचिदिन्द्ररोदसी रोधसी द्यावापृथिव्यौ विरोधनात्। एधः कूलं निरुणद्धि स्रोतः। कूलं रुजतेर्विपरीताल्लोष्टोऽविपर्ययेण। अपारे दूरपारे यत्सङ्गृभ्णासि मघवन्काशिस्ते महान् " इति॥

ऐसे यदि इन्द्र शब्द पर निरुक्त का अर्थ देखा जावे तो स्पष्ट होता है कि सूर्य और वायु आदि को ही वैदिकभाषा में इन्द्र कहते थे॥

इन्द्र इरां दृणातीति वेरां ददातीति वेरां दधातीति वेरां दारयतइति वेरां धारयत इति वेन्दवे द्रवतीति वेन्दौ रमत इति वेन्धे भूतानीति वा। तद्यदेनं प्राणैः समैन्धंस्तदिन्द्रस्येन्द्रत्वमिति विज्ञायते। इदं करणादित्याग्रायणः। इदं दर्शनादित्यौपमन्यवः। इन्दतेर्वैश्वर्यकर्मणः इच्छत्रूणां दारयिता वा द्रावयिता वा दरयिता वा यज्वनाम् (निरुक्ते)

ऐसा ही इन्द्र शब्द पर और इन्द्र के कर्म पर विचार करते हुवे सामश्रमी जी लिखते हैं:-

एवं च वृष्टिहेतुर्मेघदारको वायुविशेष एष इन्द्रो देवः प्रत्यक्षः सर्वेषाम् फलावाप्तिस्तु कर्माधीना, न देवताधीनेति याज्ञिकराद्धान्तोऽपि सदैव सर्वत्र जागर्त्यैवेत्यलमैरावतस्कन्धसमारूढस्य वज्रहस्तपुरन्दरस्य कस्यचिच्चेतनावतोऽप्रत्य-

क्षस्य कल्पनयेति । अतएव ऐरावतस्कन्धसमारूढ़ेन्द्रसमागमाद् यज्ञकुण्डभङ्गापत्तिरिति मीमांसकानां प्रहासप्रवादोपि सङ्गच्छते" इति ॥

अब पाठक विचारिये कि आत्मवासर्वस्व का लेख कहां तक युक्तियुक्त है। इन्द्राणी शब्द का निरुक्त में "इन्द्रस्य पत्नी" अर्थ है। इस मन्त्र का अर्थ निरुक्त में भी इस प्रकार है ॥

इन्द्राणीमासु नारीषुसुभगामहमशृणवं नह्यस्या अपरामपि समां जरया म्रियते पतिः सर्वस्मादिन्द्र उत्तरस्तमेतद्ब्रूमः

इस पर सामश्रमी जी लिखते हैं ॥

तदत्र सूर्यस्य चिरमेकरूपत्वेन विद्यमानत्वात् तच्छक्तेरिन्द्राण्याश्चिरमेव सुभगात्वम् । इदमेवेन्द्राण्या अवैधव्यप्रवादमूलम् । माध्यमिकेन्द्रस्य मेघचालकवायोर्हि वर्षं वर्षं प्रति रूपभेदात् तच्छक्तेः सुभगात्वाऽयोगान्नास्तीन्द्राणीति समाख्या; विश्वस्मादिन्द्रउत्तरः सूर्य्यएव, न माध्यमिक इति च ध्येयम् ॥

प्रतिफल यह है कि वेदों में आलङ्कारिक काल्पनिक रीति से रूपकादि अलकारों में वर्णित है। यास्काचार्य न स्वयं देवतों को पुरुषाकार मानते थे न उन के समय में किसी आचार्य्य का ऐसा सिद्धान्त रहा। हां अनार्य दस्यु लोग ऐसा मानते थे, यास्काचार्य ने वैदिक सिद्धान्त को कोई भ्रम से अनार्य सिद्धान्त न माने अथवा उन के स्पर्श से यह गन्ध कहीं वैदिकों में न आवे, पुरुषाकार चिन्तन को पूर्वपक्ष में रखा है और लिखा है कि–

पुरुषविधाःस्युरित्येकं चेतनावद्धि स्तुतयो भवन्ति तथाऽभिधानानि ॥

अर्थ–चेतन के समान स्तुतियां हैं। यह कारण दिया है और इस का खण्डन आगे चल कर ऐसे उपचार अक्ष नदी आदि में दिखाते हुये उत्तर पक्ष में किया है कि इन्द्र और इन्द्राणी सूर्य और उस की शक्ति, प्रकाश और तेज आदि को कहते हैं। इस में "विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः" से स्पष्ट बोध

होता है कि यहां इन्द्र पद से वायु का ग्रहण नहीं है, वायु की सहचारिणी उर्वशी है, जिस का निरुक्त "उर्वश्यप्सरा-अप्सराः-अप्सारिणी" सामश्रमीजी लिखते हैं "तथा चोदकजाला विद्युदेवोर्वश्यप्सराः " अर्थात् विद्युत् का नाम उर्वशी है। इस का यह भी अर्थ हो सकता है कि इन्द्र शब्द से परमात्मा का ग्रहण और इन्द्राणी से प्रकृति का ग्रहण करके अर्थ कीजिये ॥

मेरा दृढ़ विश्वास है कि यह लेख सं० ब्राह्मणसर्वस्व का नहीं है वरन किसी अन्य का प्रतीत होता है, और यदि यह सम्पादक जी का है तो मै कह सक्ता हूं कि सम्पादक जी मानो इस का ठेका ले चुके हैं कि चाहो वेद का सिद्धान्त विगड़े, अविद्या फैले पर "येन केन प्रकारेण " पौराणिक कथा जो सोलह आने झूंठ और वेदविरुद्ध हैं वेदानुकूल सिद्ध कियी जावें । पर यह सर्वथा असम्भव है । अब सब निष्पक्ष लोग चाहै वह आर्यसमाजी हों या न हों पुराणों को गप्प छोड़ अन्य कुछ नहीं कह सकते। सामश्रमी जी लिखते हैं:-

एवमपि पुराणादावग्न्यादीनां सर्वेषामेव देवानां स्वर्गस्थत्वम् तत्रापि पृथक् पृथक् लोकसंस्थत्वं यद्वर्णितम् तदऽवास्तविकम् । अपि तेषां चतुर्वदनविग्रहादिमत्वम् । पुत्रकलत्रगोत्रादिमत्वम् यानाशनरागद्वेषसन्तोषादिमत्वञ्चैतत्सर्वं रूपकादिजं कल्पनाप्रसूतं कविकर्मैव । एवंहि यथा विष्णुमित्रकृतमित्रलाभसुहृद्भेदकथासु काककपोतोलूककेशर्यादीनां मानुषभाषाश्रितवार्त्तादिवर्णनं बालानां नीतिधर्म्मादिचरित्रगठनार्थैव, तथा पौराणिकदैवताकारादिकल्पनाऽपि नूनं वेदविज्ञानग्रहणाऽसमर्थमतीनां स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां धर्मोपदेशादिसाहाय्यार्थैव, किञ्च यथा बालाः ताः काकोलूकादिकथाः पठन्तस्तदानीमज्ञानतस्तत्सर्वमेव वास्तविकं मन्यन्ते, ततोवृद्धिप्रभावादाप्रज्ञानाः सन्तः सदैव शिशून् पाठयन्तोऽपि तदऽतात्त्विकं स्वयमेव विदन्ति नहि वाग्मिशतैरपि तत्र तेषां विश्वासआनेतुंशक्यते, तथैव विद्यापरपर्यायवेदाध्ययनहीना बालाः कल्पितदेवस्वरूपं विश्वसन्त्येव, न परं देवस्वरूपप्रत्यक्षदर्शिनो विद्वांसो वैदिकाः ॥

अर्थात् देवताओं का रूपादि जो पुराण में कल्पित है वह कवि कल्पना मात्र है, वेदिकों का विश्वास उन पर कदापि नहीं जम सकता, क्योंकि कहा है–

एतद्ध वै मनुष्येषु सत्यं निहितं यच्चक्षुः ।

अर्थ–मनुष्यों में आंख सत्य है, देखे हुये पर विश्वास करना चाहिये ॥

देवीपुरात् ४ । ७ । ०६ इत्यलं बहुविज्ञेषु जगन्मोहन वर्मा

प्रथम जगन्मोहन जीने १५ पंक्तियों में हम सम्पादक ब्रा०स० परयह आक्षेप दिखाया है कि "इन भी० श० ने प्रथम आ० समाज से पृथक् होने के समय से तटस्थ होकर वैदिक सिद्धान्तों पर निष्पक्ष विचार का संकल्प किया था सो अब वैसा न रहा, संग दोषसे पक्षपाती हो गये,, इत्यादि सारांश निकलता है । इस पर हम अपने पाठकों को ध्यान दिलाते हैं कि जगन्मोहन जी ने अपने नामार्थ के अनुसार जगत् के मनुष्यों को कैसा मोह नाम अविद्या के जाल में डालना चाहा है सो देखिये । ब्रा० स० भाग २ अं० ५ में पृ० २१५ से २१७ तक जगन्मोहन वर्मा का पहिला निवेदन छपा है । इन निवेदन में दो बातें मुख्य हैं । १ एक इतिहास पुराणादि के स्वतः प्रमाण में शंका द्वितीय अग्नि, वायु, आदि को जो स्वा० द० ने सृष्टि के आदि में हुए ऋषि माने हैं उस में सन्देह होना, चाहे यों कहो कि जगन्मोहन जी के लेख से साफ २ झलकता है कि उक्त दोनों अंश में स्वा० दयानन्द का विचार वेद विरुद्ध है। इस पर ब्रा० स० भा० २ अं० ७ पृ० २८९ से २९२ तक में तथा भा० २ अ० ९ पृ० ३८०।३८१ में "जिज्ञासु का समाधान" ये दो लेख हमने लिखे जिनको देख कर जगन्मोहन जी ब्रा० स० भा० २ अं० ११ पृ० ४९४।४९५ में लिखते हैं कि "तु० रा० ने (व्याख्यानान्यस्यैवैतानि०) में पठित (अस्य) पद से (जीवात्मा) अर्थ लिया है । पर उस प्रकरण में जीवात्मा का कहीं कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । मैं यह अवश्य कह सकता हूं कि तु० रा० जी का ऐसा लेख केवल (आ० समाजी) मूर्ख मण्डली में स्वीकृत हो सकता है संस्कृतज्ञों में कभी आदर प्राप्त नहीं कर सकता । जब मेरा सन्देह न गया तब यह शंका निवेदन रूप से प्रस्तुत की । पुराणादि के विषय में मैं अवश्य श्री युत विद्वद्वर शिरोमणि पं० भी० श० की इस अनुमति से कि ब्राह्मण अष्टविधि है सहानुभूति करता हूं । मेरे विचार में मन्त्र और ब्राह्मण दोनों (एक ही ईश्वर से) निःश्वसित हैं ।०००। मैं सम्पादक ब्राह्मण सर्वस्व को हृदय से इस शंकानिवृत्त्यर्थ

धन्यवाद देता हूं ।०० वेद शब्द में मन्त्र और ब्राह्मण दोनों अपेक्षित हैं" आगे ब्रा० स० भा० २ अं० १० पृ० ४५३ "वस्तुतः बात तो यों प्रतीत होती है कि स्वामी (दया०) जी मीमांसा तथा कर्मकाण्ड से पूर्णतया अनभिज्ञथे" इत्यादि ब्रा० स० पृ० ४५४ "ब्राह्मण ग्रन्थ जहां तक मैंने देखे हैं मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि श्राद्ध वा पितृकर्म का मुख्य उद्देश्य एकही मृतक प्राणियों पर प्रधान है" हम सम्पादक ब्रा०स० ने ब्रा०स० भाग २ अं० १२ पृ० ५३७ से ५४४ तक में पिण्डपितृयज्ञ नामक श्राद्ध का समाधान छापा था उस को देख कर जगन्मोहन जी बहुत संतुष्ट हुए और ब्रा०स० भाग ३ अं० २ पृ० ८२ में लिखते हैं कि-"द्वितीय निवेदन के उत्तरार्द्धाभिगत शंकासमाधान जो सं० ब्रा०स० ने किया है वह वस्तुतः शास्त्र संगत सन्तोषजनक है। मैं सम्पादक जी को अन्तःकरण से धन्यवाद देता हूं। वस्तुतः पितृयज्ञ और पिण्ड दान पृथक् मानना मेरी भूल थी। शतपथादि ग्रन्थस्थ पिण्ड पितृ यज्ञ देखने से मेरी शङ्कायें निवृत्त होगयीं ०० अब मुझ को श्राद्ध विषय में वक्तव्य नहीं है०० आशा करता हूं कि सम्पादक क्षमा करेंगे" इत्यादि । इस से आगे पृष्ठ ८४ । ८५ में जगन्मोहन जी ने इन्ही तु०रा० का खण्डन बड़े समारोह से वेधड़क होकर लिखा छपाया है कि जिन का शरण अब देवतावाद के खण्डनांश में लेते हैं। अब पाठक महाशय वे०प्र० के जिस देवता खण्डन विषयक लेख का अनुवाद ज्यों का त्यों हम ने ऊपर छपाया है उस को और ब्रा० स० में जगन्मोहन जी के उन लेखों को जिन को हम ने पतों सहित ऊपर लिखा है, दोनों को मिला कर देखेंगे तो बड़ा विस्मय होगा कि क्या ये दोनो लेख एक ही जगन्मोहन जी के हो सकते हैं?। सो यह संग दोष जान पड़ता है सो कदाचित जगन्मोहन जी ने यही शोचा हो कि देवता विषय का ऐसा विरुद्ध लेख सम्पादक ब्रा०स० नहीं छापेंगे इसी लिये पं० तु०रा० की शरण ली हो, जिन का खण्डन श्राद्धादि विषय में कर चुके हैं (उन के पास ऐसा लेख इसी लिये भेजा होगा कि आ०समाजी मत नास्तिकता के अधिकांश से भरा हुआ है। परोक्ष देवतावाद को नहीं मानता है। परन्तु यह लेख हमारे पास आता तो हम भी पूर्वपक्ष में छापकर ऐसा ही खण्डन निष्पक्ष होकर तब भी करते कि जैसा अब करेंगे। हमें अब भी कुछ२ आशा इस लिये होती है कि जगन्मोहन जी के अन्तःकरण में निष्पक्ष विचार के स्वीकार का सामान विद्यमान है। इस लिये सम्भव है कि इस देवता विषयक समाधान को वे महाशय एकाग्रचित्त निष्पक्ष होकर देखेंगे

और स्वीकार करेंगे इसी कारण इस लेख को हम सर्वथा निष्पक्षता से विशेष समारोह के साथ लिखते हैं कि पाठकों को भी सन्तोष जनक होगा।

पं० सत्यव्रत सामश्रमी जी का वेद मानना।

सत्यव्रत सामश्रमी को जोकुछ आ०समाजियों ने अब तक जाना माना है सो हम ने ही पहिले उक्त पं० जी का नाम आर्यसिद्धान्त में गौरव के साथ लिखा था। सो हम अब भी कहते हैं कि वेद के सिद्धान्त विषय में अनेकों की अपेक्षा पं० स० व्र० सामश्रमी जी अच्छे जानकार हैं। कई अंशों में जहां तकउन का विचार ऋषि तथा आचार्यों केअनुकूल है। वहां तक हमको भी मन्तव्य है। क्योंकि सायण महीधरादि वेदभाष्यकार ही जब ऋषि आचार्यों की कोटि में आज तक परिगणित नहीं किये गये, कि जिनकेविचार वेदविरोधी पाश्चात्य (नई रोशनी) संस्कारों के दुर्गन्ध से दूषित भी नहीं हुए थे। तब पं० स०व्र० सामश्रमी जी किस गणना में हैं,? जिन के संस्कार आसुरी विचारों से दूषित हो चुके हैं। प्रथम जड़ की बात यही है कि सब सनातनधर्मी तथा आर्यसमाजी लोग वेद को अनादि अपौरुषेय मानते हैं कि—

नकश्चिद्वेदकर्त्तास्याद्वेदस्मर्त्तास्वयंभुवः।

परन्तु निरुक्तालोचन में सामश्रमी जी लिखते हैं—

"वस्तुतो बहूनां मन्त्राणां समालोचनादपि व्यक्तं प्रतीयतएव तेषां धीमत्पुरुषकृतत्वम्। तथा चास्मत्पूर्वपुरुषैः ऋषिभिरेव कृत एष वेदमन्त्रभागोऽपीति सुस्थिरम्"॥

भावार्थः—वास्तव में सिद्धान्त तो यह है कि बहुत मन्त्रों की समालोचना करने से भी यह स्पष्ट प्रतीत होता ही है कि वेदमन्त्र बुद्धिमान् पुरुषों के बनाये हैं। सो हमारे ही कुलों में हम से पहिले हुए ऋषि लोगों ने ही यह मन्त्र भागरूप वेद भी बनाया है, यह सिद्धान्त निर्विकल्प सिद्ध जानो।

सामश्रमी के पिछलगा आर्यसमाजियो! बताओ तो सही कि ऋग्वेदादि भूमिकादि में लिखा तुम्हारा मत ठीक है कि "वेद नित्य अनादि अपौरुषेय हैं" अथवा तुम्हारे अग्रगन्ता सामश्रमी का मत ठीक है कि "बुद्धिमान् मनुष्यों ने वेद बनाये हैं" यदि सामश्रमी के पीछे२ चल कर धक्के खाना चाहते हो तो पहिले बुद्धिमान् मनुष्यों के बनाये वेदों को मानलो। यह भी स्मरण रहे कि सामश्रमी जी के अन्य भी अनेक मन्तव्य आर्यसमाजादि से विरुद्ध अवश्य हैं जिन को कभी प्रसङ्गान्तर में हम दिखावेंगे।

सामश्रमी ने जिन २ निरुक्तादि के प्रमाणादि से सिद्ध किया है कि वेद मनुष्य कृत हैं। हम उन सब अंशों का युक्ति प्रमाण सहित पुष्ट प्रबल समाधान करने की इच्छा रखते हैं। यदि ईश्वर ने किया तो हम इस अंश पर कभी लिखेंगे। अभी यहां देवता विषय में विचार लिखना है। हमारा सिद्धान्त यही है कि वेद अनादि अपौरुषेय हैं। सारांश यह निकला कि सामश्रमी का विचार देवता विषयमें भी आर्य ऋषि लोगों की सनातन मर्यादासे सर्वथाही गिरा हुआहै, इसलिये ये महाशय हमारी दृष्टिमें प्रामाणिक नहीं हैं।सामश्रमी का यह दावा कदापि सत्य नहीं है कि-"निरुक्तकार यास्क के मत से भी चेतन देवता कोई नहीं, किन्तु अग्नि आदि जड़ पदार्थों की स्तुति भी चेतनों के तुल्य करने की शैली ही वेद की है। जैसे नदी की स्तुति वा सोम कूटने के पत्थरों की स्तुति है वैसे ही इन्द्रादि देवतों में हाथ पांव आदि की कल्पनामात्र वेद में की गयी है।" इस के लिये निरुक्त दैवतकाण्ड अ०- ७ खं० ५ को देखिये—

स न मन्येतागन्तूनिवार्थान् देवतानां प्रत्यक्षदृश्यमेतद्भवति माहाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयत एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति। अपि च सत्वानां प्रकृतिभूभिर्ऋषयः स्तुवन्तीत्याहुः। प्रकृतिसार्वनाम्न्याच्चेतरेतरजन्मानो भवन्तीतरेतरप्रकृतयः कर्मजन्मान आत्मजन्मानः। आत्मैवैषां रथो भवत्यात्माऽश्व आत्मायुधमात्मेषव आत्मा सर्वं देवस्य देवस्य ॥

भाषार्थः-वह षडङ्ग वेद पढ़ने वाला ब्राह्मणादि यह न मान लेवे कि जैसे मनुष्यादि के घोड़े आदि साधन प्रत्यक्ष मनुष्यों के तुल्य अनित्य नाश वाले होते हैं वैसे देवताओं के भी अश्वादि अनित्य होंगे, तब उनके अनित्य होने से उन की वेद में स्तुति अनर्थक है। क्योंकि (देवताया माहाभाग्यादेक आत्मा बहुधा स्तूयते) महान् ऐश्वर्य अणिमामहिमादि स्वाभाविक सिद्धियों वाला एक २ ही देवता होने से एक ही आत्मा (एक ही ईश्वर परमात्मा) इन्द्रादि अनेक नाम रूपों में स्तुति किया जाता है (एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति) एकही परमात्मा देव के अन्य सब देवता अङ्ग प्रत्यङ्ग रूप होते हैं। अर्थात् एक ही ईश्वर अनेक नाम रूप मात्र उपाधियों में

अवस्थित उन २ देवतावाची नाम रूपों से स्तुति किया जाता है। (अपि च सत्वानां प्रकृतिभूमिभिर्ऋषयः स्तुवन्तीत्याहुः) और कार्य वाचक घोड़े आदि प्राणियों की प्रकृति उपादानकारण जो आदित्य देवतादि हैं उन के महत्त्व को लेकर ऋषि लोगों ने अश्वमेधादि यज्ञों में अश्वादि की स्तुति की है किन्तु विकार वस्तु की तुच्छता को लेकर नहीं और विकार वाची जितने नाम रूप होने से देवता एक दूसरे से पैदा होने वाले होते और एक दूसरे की प्रकृति उपादान कारण बनते हैं। और यज्ञादि कर्मों से भी देवता प्रकट होते हैं । (कर्मणो जन्मयेषामिति कर्मजन्मानः) सौ यज्ञ करने वाला इन्द्र बनता है इसी लिये इन्द्र का नाम शतक्रतु है । तथा (आत्मजन्मानः) देवताओं का आत्मा से जन्म होता अर्थात् परमेश्वर से ही सब देवता उत्पन्न होते हैं। जैसे सूत से ही सब कपड़ा बनते हैं इस कारण सब वस्त्र सूत ही रूप हैं। वैसे ही आत्मासे उत्पन्न होने के कारण सब देवता आत्मरूप ही हैं। इन प्रत्येक देवताओं का रथ, घोड़ा, आयुध, वाण इत्यादि सब सामान आत्मरूप ही है।

वेद का मुख्य सिद्धान्त सर्व आर्ष ग्रन्थ सम्मत एकेश्वरवादपरक है इसी लिये मनुस्मृति के १२ वें अध्याय में भी यही लिखा है कि (आत्मैव देवताः सर्वाः) आत्मा ही सब देवता रूप है, क्योंकि एक ही आत्मा से सब देवता निकले हैं कि जैसे अग्नि से छोटी २ चिनगारियां निकलती हैं। वे सब चिनगारियां जैसे अग्नि रूप ही हैं, वैसे ही सब देवता आत्मरूप ही हैं। यही बात निरुक्त के वृत्तिकार पं० दुर्गाचार्य जी ने इसी उक्त निरु० के ५ पांचवें खण्ड की वृत्ति में लिखी है कि-

आत्मैव सर्वं स्थावरजङ्गममित्यवेत्य-अश्वमेधे मूलेभ्यः स्वाहा,शाखाभ्यः स्वाहा-इत्येवमादिभिस्तेनतेन वैशेषिकेण स्थावरजङ्गमात्मना प्रकृतेरभिन्नेनावस्थानेनावस्थितो महानेवात्मेज्यते नह्यदेवता यागमर्हति ॥

भा०:-स्थावर जङ्गमादि सर्वरूप एक चेतन आत्मा ही है ऐसा मान कर अश्व[illegible] यज्ञ में वृक्ष के मूल (जड़ें) और शाखाओं के लिये आहुति दी हैं। सो प्रकृति मूल कारण से अभिन्न दशा में अवस्थित स्थावर जङ्गम वृक्ष, मूल, शाखादि नाम रूप से विद्यमान एक महान् आत्मा ही यज्ञों द्वारा पूजा जाता

है किन्तु अदेवता अर्थात् अचेतन मूल शाखादि द्रष्ट मात्र के लिये आहुति कदापि नहीं दी जाती है। इत्यादि सहस्त्रों प्रमाणों से यह बात सम्यक् सिद्ध है कि एक ही परमेश्वर अनेक देवता नाम रूप से अवस्थित वस्तुतः अभिन्न होने पर भी भिन्न २ प्रतीत हो रहा है कि जैसे एक ही पार्थिवतत्त्व अपने नाना परिणामों में अनेक नाम रूप से प्रतीत होता वा एक ही सुवर्ण अनेक आभूषणों में अनेक नाम रूप से कहा माना जाता है। एक ही सूत अनेक वस्त्र नाम रूप से व्यवहृत होता है। इसी सिद्धान्त से सब देवता ईश्वरांश रूप होने से चेतन हैं। यही निरुक्तादि सब आर्ष ग्रन्थों का मन्तव्य परम सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को ठीक मानने की दशा में सामश्रमी का यह कथन कि "वृष्टिहेतुर्मेघदारको वायुविशेष एष इन्द्रो देवः प्रत्यक्षः सर्वेषाम्" वर्षा का हेतु मेघ को काटने तोड़ने वाला वायु विशेष यह प्रत्यक्ष इन्द्र देवता है। यह कथन सर्वथा ही वेद विरुद्ध है क्योंकि (इन्द्रं मित्रं०— एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति० । ऋ० २।३।२२।६) इस मन्त्र में वेद का वही सिद्धान्त साफ २ दिखाया है कि एक ही ब्रह्म परमात्मा इन्द्र मित्रादि अनेक नाम रूपों से कहा जाता है । इस से सामश्रमी का मन्तव्य सर्वथा वेद विरुद्ध सिद्ध है ॥

और निरुक्त अ० ७ खं० ७ में जो अपुरुष विध देवता माने हैं। जिसको सामश्रमी ने निरुक्त कार का मुख्य सिद्धान्त माना है। वह किन्हीं आचार्यों का एक देशी मत है । क्योंकि ऊपर लिखा खण्ड ५ वें में निरुक्तकार का असली सिद्धान्त है कि जो अन्य ऋषियों तथा आचार्यों के ग्रन्थों से तथा मूल वेद से ठीक मिलता है जिसको हम अभी ऊपर सानुवाद लिख चुके हैं। (इत्येकम्। इत्यपरम्) ऐसा लिख कर निरुक्त कार ने साफ २ दिखला दिया है कि यह अन्य लोगों का मत है। ऊपर पांचवें खण्ड में लिखे विचार में निरुक्तकार ने अपर आदि कोई शब्द नहीं डाला जिस से स्पष्ट सिद्ध है कि निरुक्त कार का ही वह खास मन्तव्य है। और इस खण्ड पांचवें में कहे सिद्धान्त का पोषक निरुक्त में बीसों जगह लेख मिलेगा इस से भी निरुक्त का यही सिद्धान्त ठहरेगा। जिस के प्रतिपक्ष में कोई भी समाजी वा सामश्रमी जी स्वयं शिर उठावेंगे तो हम सहस्त्रों युक्ति प्रमाणों से उत्तर देकर उस पक्ष को सिद्ध करने का पूर्ण उद्योग करेंगे । इसी खण्ड के नोट में सामश्रमी जी अपने छपाये निरुक्त में लिखते हैं कि निरुक्तकार ने आत्मवादी ऋषियों का मत दिखाया है। जिससे यह बात निकलती है कि निरुक्तकार का और हमारा मत आत्मवादियों से भिन्न है । सो हम सामश्रमी जी से पूछते हैं

कि आत्मवादियों से विरुद्ध मत अनात्मवाद होगा। वह अनात्मवाद मत निर्विकल्प नास्तिक होगा। हम को जहां तक निश्चय है वहां तक स्वामिदयानन्द जी का चलाया आर्यसमाजी मत भी अनात्मवाद नहीं है, किन्तु आत्मवाद का ही एक प्रकार वा ढंग आ० समाजी मत है। परन्तु सामश्रमी जी का मत इसे अनात्मवाद (नास्तिकों कासा) प्रतीत होता है। ऐसों के पीछे चलने का साहस किया तो यह आ० समाज भी अज्ञानान्ध कूप में अवश्य गिरेगा। जब कि वेद को बुद्धिमान् मनुष्यों का बनाया सामश्रमी जी ने लिखा तो यह वेद की निन्दा हो गयी और (नास्तिको वेदनिन्दकः) वेद का निन्दक नास्तिक कहाता है। इसलिये यदि जगन्मोहनजी का वास्तव में वह सिद्धान्त जिस को वे पहिले छपा कर प्रकाशित करचुके हैं कि "मन्त्र तथा ब्राह्मण दोनों ही साक्षात् ईश्वर से निःश्वसित होने के कारण दोनों ही स्वतः प्रमाण वेद हैं" यह उन का मन्तव्य ठीक है, तो वे सामश्रमी का पीछा छोड़ देवें। क्योंकि सामश्रमी का विचार इस मन्तव्य से सर्वथा विरुद्ध है। जैसा हम पूर्व दिखा चुके हैं। जब कि यह सिद्धान्त सर्वास्तिक सम्मत तथा आर्यसमाजी मत के भी सर्वथा अनुकूल है और आशा है कि हमारे मित्र जगन्मोहन जी भी इस से कदापि मुख न मोड़ेंगे कि-

सर्ववेदायत्पदमामनन्ति तपांसिसर्वाणिचयद्वदन्ति ॥

इस कठोपनिषद् की श्रुति का अभिप्राय यह है कि सब वेद जिस प्रणव पद वाच्य ब्रह्म की प्राप्ति को ही वार २ पुकार २ कर कह रहे हैं। तथा सब प्रकार से तप नाम श्रौतस्मार्त्त कर्मकाण्ड का भी अभिप्राय केवल एक आनन्द मय परमात्मा की ओर झुकाने का ही है। और स्वामि दयानन्द स० का सिद्धान्त भी यही है कि अग्नि वायु आदित्यादि सभी वेदोक्त नाम ईश्वर के भी हैं। और सनातन धर्मी ऋषि महर्षियों का परम्परा से यही सिद्धान्त चलाआता है कि एक ही परमात्मा के ब्रह्मा विष्णु महेश वा अग्नि वायु आदित्य इन्द्र वरुणादि अनेक नाम तथा रूप हैं, वह एक ही अनेक नाम रूपों में अवस्थित है। सर्व वेदभाष्यकार श्री सायणाचार्य जी ने भी इसी सनातन सिद्धान्त को ऋग्वेदभाष्य की भूमिका में सिद्ध करते हुए लिखा है कि-

यद्यपीन्द्रादयस्तत्रतत्र हूयन्ते तथापि परमेश्वरस्यैवेन्द्रादिरूपेणावस्थानादविरोधः। तथाच मन्त्रवर्णः—इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथोदिव्यः स सुपर्णोगरुत्मान्। एकंसद्विप्रा बहु-

धावदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुरिति। वाजसनेयिनश्चा-मनन्ति-तद्यदिदमाहुरमुंयजामुंयजेत्येकैकं देवमेतस्यैव सा वि-सृष्टिरेषउह्येव सर्वेदेवाइति तस्मात्सर्वैरपि परमेश्वरएवहूयते॥

भा०:-यद्यपि उन २ यज्ञादि कर्मों में पृथक् २ इन्द्रादि देवतों को आवाहन (आह्वान) किया जाता है। इस से यह न मान लेना चाहिये कि वेद में अनेक देवतावाद का सिद्धान्त है। क्योंकि वही एक परमेश्वर अनेक इन्द्रादि रूपों में अवस्थित है। इस कारण अनेक देवता वाची नामों से एक ही परमेश्वर की उपासना भक्ति पूजा वेद द्वारा होती है। सो यही बात ऋग्वेद मण्डल १ सू० १६४। मन्त्र ४६ (इन्द्रं मित्रं वरुणम०) इत्यादि मूल मन्त्र में भी कही है कि इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, अग्नि, यम, वायु इत्यादि अनेक नाम रूपों से उसी एक परमात्मा को कहते मानते हैं। और वाजसनेयी शाखा वालों की यह श्रुति है कि- "सो जो याज्ञिक लोग यज्ञ के समय (अध्वर्यु, होता से कहता है कि " इन्द्रं वज्रिणं यज। अग्निं वैश्वानरं यज। अग्निं पवमानं यज। सोमं यज। सवितारं यज।" इत्यादि तब होता याज्या ऋचा बोलता है। होता के वौ ३ षट् कहने तथा यजमान के त्याग वाक्य बोलने पर अध्वर्यु आहुति छोड़ता है) अमुक देवता का यजन करो, अमुक देवता का यजन करो। इस प्रकार एक २ देवता के लिये भिन्न २ आहुति दी जाती है। सो इसी परमेश्वर की सृष्टि में वे २ देवता एक २ अङ्ग मात्र हैं। इस से यह एक ही परमेश्वर सर्व देव रूप है इस लिये सब याज्ञिकादि एक परमेश्वर का ही आह्वान उन २ देवता वाची नाम रूपों से करते हैं।" इस सिद्धान्त के साथ आ० समाजी मूल सिद्धान्त का केवल इतना ही अन्तर है कि सनातन धर्मी एक ईश्वर के अनेक नाम रूप दोनों मानते हैं। और आ० समाजी एक ही ईश्वर के अनेक नाम तो मानते हैं किन्तु उस के अनेक रूप नहीं मानते। सो यदि वास्तव में वेद के अटल सिद्धान्त तक समाजियों की बुद्धि कभी पहुंची तथा निष्पक्ष विचार हठ छोड़कर किया, तो अनेक रूप भी अवश्य मान लेंगे। अब पाठक महाशय! आप शोचिये कि सामश्रमी का विचार इस वेद के सिद्धान्त से कैसा विरुद्ध है। वेद का सिद्धान्त कर्मकाण्ड विषय में एक चेतनात्मवाद परक है। यही याज्ञिकों का मत है। और सामश्रमी का मत जड़वाद (मैटरवाद) परक है। और यदि कोई कहे कि (अपुरुषविधाः स्युरित्यपरम्) ऐसा कह कर पुरुषाकार विग्रहवती देवता का खण्डन निरुक्त में क्यों किया गया? तो इस का उत्तर सुनिये- (शेष आगे)

सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग

वेद प्रकाश नामक पत्र में "बस अब तो हम इस विषय का यहीं विराम करते हैं किंतु यदि मृतकश्राद्धवादी लोग किसी अन्य प्रकरण को लेकर स्वपक्ष पोषण का उद्योग करेंगे तो हम उस पर फिर विचार करेंगे ॥ इति पितृयज्ञ व्याख्यानम् (देखिये वेद प्रकाश १०-८) इत्यादि लेख देखकर स्पष्ट ज्ञात होता है कि संपादक महाशय ने जिन ग्रंथों का प्रमाण लिखा है उन ग्रंथोंको किसी गुरु से नहीं पढ़ा, किन्तु मन माने उन का अर्थ करना आरम्भ कर दिया और मन को किसी भी प्रकार संतोष दे दिया। अब मेरी प्रार्थना संपादक महाशय से यह है कि अब भी संस्कृत विद्या के केन्द्र काशी को जावें और पूर्वमीमांसा श्रौतसूत्र ब्राह्मणग्रन्थ और मंत्रसंहिता किसी विद्वद्वर्य्य गुरु से श्रद्धा पूर्वक अध्ययन कर फिर श्राद्धादि गूढ़ विषयों पर विचार करें तो उन्हें ज्ञात हो जावेगा कि मंत्रसंहिता, ब्राह्मण ग्रंथ, श्रौतसूत्र, पूर्वमीमांसा, महाभारत, वा रामायण, धर्मशास्त्रादि में मृतकश्राद्ध ही है न कि जीवित श्राद्ध है। जिन ग्रन्थ और शवर भाष्यादि का नाम उनने अपने पत्र में लिखा है, उन हीं से मृतकश्राद्ध सिद्ध है। विना गुरु के यह सिद्धान्त कैसे समझ में आवेगा ?। हां, बात यह है कि वे पक्षपात गर्व और आलस्य का त्यागकर किसी मन्त्रादि के अर्थ को किसी प्रामाणिक भाष्य के अनुसार अध्ययन करें और वाक्यार्थ बोध में चार–कारण आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति, और तात्पर्य, को रखकर प्रकरण वा प्रसंग देख के अभिप्राय को समझें बूझें तो सिद्धान्त निकल आवेगा कि "श्राद्ध क्याहै" यज्ञ, मारण, मोहनादि विषयोंपर तो आर्य समाजी चुप ही हो रहे हैं। नोटिस की अवधि भी हो चुकी (देखिये ब्राह्मणसर्वस्व अं० ४–७) कुछ उत्तर नहीं दे सकते। हम दो मास की अवधि और भी देते हैं कि वे इन विषयों पर अवश्य विचार करें और सिद्धान्त निकालें ॥

अब हम ऋग्वेद मण्डल १० से और अथर्ववेद काण्ड १८ से कुछ मन्त्र श्राद्ध के विषय में उद्धृत कर दर्शाते हैं कि ये मन्त्र मृतक के श्राद्ध के विषय में हैं न कि जीवित के विषय में देखिये ऋग्वेद संहिता १०-१-१५ (१-१४) और अथर्ववेद संहिता १८-३-४४ काण्ड १८ पूरा पढ़ना चाहिये। तब मन्त्र ४४ का अर्थ पूरा २ लग जावेगा, इस से स्पष्ट सिद्ध हो जावेगा कि श्राद्ध मृतक का है न कि जीवित का है। इन मन्त्रों पर ऐतरेय ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण और सायण भाष्य विचारणीय हैं। यदि आर्यसमाजियों को और कोई ऋषि

मुनि आचार्य प्रणीत भाष्य प्रामाणिक दीख पड़े तो उस पर भी वे विचार करें और अर्थ करें और तात्पर्य निकालें। चिन्हित शब्दों पर अवश्य ही विचार करें। विना प्रमाणके कोई लेख न लिखा करें, निर्णय करना अवश्य है।

ऋग्वेद संहिता मं० १०-१ १५ (१-१४)

शंखो यामायन ऋषिः। पितरो देवताः॥

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु॥१॥
इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उ परास ईयुः।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु॥२॥
अग्निष्वात्ताः पितरएहगच्छत सदःसदःसदतसुप्रणीतयः।
अत्ताहवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथारयिं सर्ववीरं दधातन।११।
ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्येदिवःस्वधयामादयन्ते।
तेभिःस्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व॥१४॥

इसके पूर्व १०-१ १४ (७-८) भी विचारिये॥ अथर्ववेद संहिता १८-३-४४

अग्निष्वात्ताःपितरएहगच्छत सदःसदःसदतसुप्रणीतयः।
अत्ताहवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात।४४।

महाशय इस मन्त्र का अर्थ किसी प्रामाणिक भाष्य के अनुसार कीजिये और इस मन्त्रका अर्थ करते समय निम्नलिखित मन्त्रों काभी अर्थ कीजिये। तब पूरा विषय समझ में आवेगा॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येनातेपूर्वेपितरःपरेताः।
उभा राजानौ स्वधयामदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम्।
१८।१।५४॥
अपेतवीत इत्यादि ॥१८।१।५५॥ और मन्त्र॥ ५८।७३॥
योममारप्रथमोमर्त्यानां यःप्रेयाय प्रथमोलोकमेतम्।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमंराजानंहविषासपर्यत।१८।३।१३।

आर्यसमाजी इन मन्त्रों का अर्थ और तात्पर्य प्रमाण पूर्वक निकालें देखो

मृतक श्राद्ध स्पष्ट मन्त्र संहिता में है। दुराग्रह की श्रोषधि नहीं हो सकती है॥ अभी हमने केवल दिङ् मात्र यह विषय दर्शाया है। यदि आर्यसमाजी हठ ही करेंगे और न मानेंगे तो हम पूरा २ इस विषय पर लेख लिख कर उन्हें मन्त्र संहितादि से प्रमाण देकर मृतक श्राद्ध सिद्ध कर देवेंगे। परन्तु आशा है इतने ही से आर्यसमाजी समझ जावेंगे और दूसरा लेख इस विषय पर हमें न लिखना पड़ेगा क्योंकि आ०स० में इस विषयपर विचारही हो रहाहै॥

हमारा प्रस्तुत विषय आज के लेख में स्वामिदयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका और सत्यार्थप्रकाश के दो प्रकरणों पर है वे ये हैं-

(१) देखिये ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका द्वितीयावृत्ति पृष्ठ ८०-८१ और सत्यार्थप्रकाश द्वितीयावृत्ति पृष्ठ २०५ दोनों लेखों में परस्पर कितना विरोध है। लेखक एक है-

अथ वेदसंज्ञाविचारः-

अथ कोऽयं वेदो नाम मन्त्रसंहितेत्याह। किंच मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयमिति कात्यायनोक्तेर्ब्राह्मणभागस्यापि वेदसंज्ञा कुतो न स्वीक्रियत इति। मैवं वाच्यम्। न ब्राह्मणानां वेदसंज्ञा भवितुमर्हति। कुतः। पुराणेतिहाससंज्ञकत्वाद्वेदव्याख्यानादृषिभिरुक्तत्वात्। कात्यायनभिन्नैर्ऋषिभिर्वेदसंज्ञायामस्वीकृतत्वान्मनुष्यबुद्धिरचितत्वाच्चेति॥

भावार्थ-प्रश्न-वेद किन का नाम है? उ० मंत्र सहिंताओं का। प्र० जो कात्यायन ऋषि ने कहा है कि मंत्र और ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम वेद है फिर ब्राह्मण भाग को भी वेदों में ग्रहण आप लोग क्यों नहीं करते हैं? उ० ब्राह्मण ग्रंथ वेद नहीं होसकते, क्योंकि उन्हीं का नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा, और नाराशंसी भी है। वे ईश्वरोक्त नहीं हैं, किन्तु महर्षि लोगों के किये वेदों के व्याख्यान हैं "एक कात्यायन को छोड़ के किसी अन्य ऋषि ने उन के वेद होने में साक्षी नहीं दी है" और वे देहधारी पुरुषों के बनाये हैं, इन हेतुओं से ब्राह्मण ग्रंथों की वेद संज्ञा नहीं हो सकती और मंत्र संहिताओं का वेद नाम इस लिये है कि ईश्वर रचित और सब विद्याओं का मूल हैं॥

अब पढ़िये सत्यार्थ प्रकाश-(प्रश्न)-वेद किन ग्रंथों का नाम है? (उत्तर) ऋक् यजुः साम और अथर्व मंत्र संहिताओं का अन्य का नहीं (प्रश्न):-

मंत्र ब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम् ॥ इत्यादि कात्यायनादि कृत प्रतिज्ञासूत्रादि का अर्थ क्या करोगे ? (उत्तर) देखो संहिता पुस्तक के आरंभ अध्याय की समाप्ति में वेद सनातनसे शब्द लिखा आता है और ब्राह्मण पुस्तक के आरंभ वा अध्याय की समाप्ति में कहीं नहीं लिखा और निरुक्त में:-

इत्यपि निगमो भवति इति ब्राह्मणाम् ।
छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ॥

यह पाणिनीय सूत्र है इस से भी स्पष्ट विदित होता है कि वेद मन्त्र भाग और ब्राह्मण व्याख्या भाग इस में जो विशेष देखना चाहैं तो मेरी बनाई ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में देख लीजिये वहां अनेकशः प्रमाणों से विरुद्ध होने से "यह कात्यायन का वचन नहीं होसकता" ऐसा ही सिद्ध किया गया है-

हे पाठक गण! टुक विचारिये चिन्हित पंक्तियों को देखिये स्वामि दयानन्द के दोनों लेखों में कितना विरोध है। एक स्थान में लिखते हैं कि कात्यायन मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को वेद मानते हैं और दूसरे स्थल में कहते हैं कि "मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनाम धेयम्" यह कात्यायन का वचन ही नहीं हो सक्ता। भला स्वामी दयानन्द ने जो विरोध किया सो किया, तुलसीराम स्वामी यह सब भूल गये और एक तीसरा मार्ग निकाला (देखिये तुलसीराम स्वामी विरचित ऋगादि भाष्य भूमिकेन्दु परागे पृष्ठ ४)-

"आपस्तम्ब कात्यायन की ये यज्ञपरिभाषा हैं । जब यज्ञ परिभाषा सूत्र हैं तब तो केवल उसी ग्रन्थ में माना जायगा" इत्यादि काग़ज़ रंग रंग कर अंधों (अज्ञों)का ढेर लगा दिया। परन्तु देखा चाहिये कि इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) की सम्मति अर्थात् आदेशार्थ सहायकों की शुभ नामावलि+क्या कर दिखाती है। वह अवश्य ही हमारे लेखों पर विचार करेगी अर्थात् मनुष्य धर्म का पालन कर असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण ही करेगी ॥

+नोट-नामावलि "विद्वद्वर्य पं० तुलसीराम स्वामीसे गुरुकुल विद्यालयों के पंडित वर्य श्रीयुत पं० काशीनाथ शास्त्री आदि तक") से सविनय प्रार्थना है कि जिस को चाहैं प्रेसीडेण्ट कर लेवें और उन को सहायता देदेकर लेख लिखवावें और छपवावें प्रत्येक मेम्बर कोलाहल न मचावे इनसे सिद्धान्त नहीं निकल सकता । महाशय सनातनधर्मावलंबी भी एक महती सभा कर रहे हैं"

(२) फिर भी देखिये "वेदसंज्ञा विचार" इस विषय पर विचार करते हुए स्वामी दयानन्द कहते हैं–

अन्यदप्यत्र प्रमाणमस्ति न्यायदर्शनभाष्ये। वाक्यविभागस्य चार्थग्रहणात् (न्यायदर्शनम् अ० २ आ० १ सू० ६०)। अस्योपरि वात्स्यायनभाष्यम्। प्रमाणं शब्दो यथालोके विभागश्च ब्राह्मणवाक्यानां त्रिविधः। अयमभिप्रायः। ब्राह्मणग्रन्थशब्दा लौकिकाएव न वैदिकाइति। तेषां त्रिविधो विभागः लक्ष्यत इत्यादि······विधिविहितस्यानुवचनमनुवादः ॥ ६४ ॥

यहां स्वामिदयानन्द, महर्षि वात्स्यायन के अनुसार यह सिद्ध करना चाहते हैं कि मन्त्रसंहिता ही 'वेद' हैं ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं। 'अयमभिप्रायः' से वैदिका इति तक स्वामिदयानन्द का लेख है वह अपनी ओर से वात्स्यायन भाष्यमें घुसेड़ दिया है। देखिये ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका द्वितीया वृत्ति पृष्ठ ८४ वा ८५ ॥ अब देखिये महर्षि–वात्स्यायन–वाक्यविभागस्य चार्थग्रहणात्। इस सूत्र का भाष्य इस प्रकार करते हैं।

प्रमाणं शब्दो यथा लोके विभागश्च ब्राह्मणवाक्यानां त्रिविधः।

भा०:–जैसे लौकिक वाक्यों में वैसे ही ब्राह्मण वाक्यों के तीन विभाग वा भेद किये गये हैं (और वे सूत्र ६१, ६२, ६३, और ६४ में वर्णित हैं)। और "विधिविहितस्यानुवचनमनुवादः" इस सूत्र का भाष्य करते हुए महर्षि वात्स्यायन कहते हैं॥

"यथा लौकिके वाक्ये विभागेनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वमेवं 'वेदवाक्यानामपि' विभागेनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वं भवितुमर्हतीति (वात्स्यायनभाष्यन्यायदर्शन २,१,६४)

भा०:–जैसे लौकिक वाक्योंमें विभाग से अर्थ ग्रहण होने से प्रमाण होना सिद्ध होता है ऐसे ही विभाग से अर्थ ग्रहण होनेसे वेदवाक्यों में भी प्रमाण होना समझना चाहिये। अर्थात् महर्षिवात्स्यायन ब्राह्मण की वेद में गणना करते हैं यह बात महर्षि गोतम कृत न्यायदर्शन सूत्र ६०–६१–६२–६३–६४ और उन पर महर्षि वात्स्यायन कृत भाष्य देखने से स्पष्ट है परन्तु स्वामी दयानन्द को उलटी ही सूझ पड़ी "कि इन सूत्रों का यह अभिप्राय है कि ब्राह्मण ग्रन्थ शब्द लौकिक हैं न कि वैदिक अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं" (देखिये ऋग्वेदादि भाष्य भूमि का पृष्ठ ८४) ॥

अब यहां विचारणीय यह है कि या तो स्वामी दयानन्द ने न्याय दर्शन आद्योपान्त अध्ययन नहीं किया या उन को भ्रम हुआ, या अपनी बात को

किसी भी प्रकार से सिद्ध करने के लिये संसार को धोखा देना चाहा, कुछ भी हो, अब भी आर्यसमाजियों को चाहिये कि वे स्वामि दयानन्द की प्रतिज्ञा के अनुसार उन की भूलों का स्वीकार कर, उन के लेखों को शुद्ध कर लेवें। (देखिये सत्यार्थ प्रकाश भूमिका पृष्ठ ४)-"इस ग्रन्थ में जो कहीं २ भूल चूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूल चूक रह जाय उस को जानने जनाने पर जैसा वह सत्य होगा वैसा कर दिया जायगा" इस के अनुसार आर्यसमाजी वर्त्ताव करें बुराई नहीं है॥

देहली की सम्मति अर्थात् आदेशार्थ सहायकों की शुभ नामावलि जिस के तुलसी राम स्वामी आदि मेम्बर हैं। अवश्य ही स्वामी दयानंद की अशुद्धि वा त्रुटि को दूर करने का प्रयत्न करेगी। तुलसीराम स्वामी न्याय दर्शन का भाषानुवाद करते समय इस विषय को शुद्ध करने के लिये क्यों चुप रह गये वेही जानें॥

हे पाठक गणो! यह संक्षेप से हम ने स्वामी दयानन्द और तुलसीराम स्वामी की भूलें बतलाईं अब आगे के पत्र में श्राद्ध विषय पर जो आजकल ब्राह्मणसर्वस्व और वेदप्रकाश में चल रहा है सविस्तर प्रमाण सहित लेख आप को अर्पण करेंगे और मंत्र संहितादि से सिद्ध कर देवेंगे कि श्राद्ध मृतक का ही है न कि जीवित का है अभी हम ने इस विषय पर केवल दिङ्मात्र दर्शन कराया है आशा है कि आर्यसमाजी भाई इतने ही से समझ जावेंगे चुप रह जावेंगे और व्यर्थ कोलाहल न मचावेंगे॥ हमारा तात्पर्य किसी प्रकार उन के हृदय को दुःखित करने का नहीं है, केवल लेखदंड द्वारा उन को सुधारने और सत्य मार्ग पर लाने का है॥ शुभम्भवतु॥ ता० १० सि० ६॥

आप का कृपाकांक्षी विहारीलाल बी० ए० शास्त्री,

गंजीपुरा, जब्बलपुर सी० पी०

प्रिय मित्रो! अगर रावण न होता तौ श्रीरामचन्द्र भगवान् के अवतार विना भक्तों का क्योंकर उद्धार होता? अगर कंसादिक पापी न होते, तौ साक्षात् पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानंन्द श्री कृष्णचंद्र भगवान् की अद्भुत लीलाओं के विना संसार का कौन उद्धार करता? अगर आज दिन दयानन्दी समाज न होता, तौ धर्मावतार काशी पुरी में श्री भारत धर्ममहामण्डल के विना तथा पांडु पुत्र के अवतार पं० भी० से० शर्मा के विना आज श्री सनातन धर्म के गूढ़ विषयों को कौन प्रगट करता चाहै यूं कहो कि श्री कृष्णचंद्रादिक भगवान् के अवतारों के विना आज दिन इस सारे भूमंडल पर राक्षस ही राक्षस होगये

होते इसी वास्ते जगदाधार श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् हरदम अवतार लेकर दुष्टों को मार अपनी महिमा को प्रगट करते रहते हैं कि जिससे भक्तजन उन श्री कृष्णचन्द्र भगवान् का पूजन अर्चन कर इस अगाध संसार से पार उतर जन्म मरण के अपार दुःख से छूटैं।

प्रिय पाठक गण, आज दिन समस्त भारत वर्ष में सच्चिदानन्द आनन्द कन्द श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् का कहीं पूजन, कहीं पाठ, कहीं स्तुति, कहीं भोग, कहीं बन्दना इत्यादि रीतियों से भगवान् की सेवा प्रेम प्रीति से हो रही है कि जिसको पं० भी० से० प्र० ने अटल युक्तियों द्वारा तथा अचल प्रमाणों द्वारा सब को समझा दिया है कि जिसमें किसी को भी लवलेश मात्र शंका नहीं रही। अब सम्पा० वे० प्र० को कोई भी युक्ति प्रमाण न मिलने के कारण चारों तरफ से घिर गये और चक्कर खाकर ऐसे गिरे कि अब उठना मुशकिल है। आप कहते हैं कि मन्दिरों में भोग वगैरह तो लगता है लेकिन टट्टी पेशाब नहीं-वाह, क्या तर्कना उठी है कि जिसको महामूर्ख भी नहीं उठा सकता। तु० रा० जी! जरा सोचिये तो सही कि श्री सनातन धर्मियों के नियम हैं कि किसी के घर उसका इष्ट मित्र व पावनैं महमान् आजावें तो उसे यह कहते हैं कि आप रसोई खाइये, पानी पीजिये, आराम कीजिये, ऐसा नहीं कहते कि आप जुलाब लीजिये, टट्टी पेशाब जाइये, क्या आर्यसमाज में यह नियम है कि कोई आवे तो नीच कामों की सब से पहिले पूछना? क्या कहीं समाज ने टट्टी पेशाब का ठेका तो नहीं लिया है? कि जिससे उनकी आमदनी में, या उनको जबाब देही में हरज पड़े, कि ठाकुरजी टट्टी पेशाब नहीं जाते, हम को अनुमान होता है कि संसार भरके नीच कामों का ठेका आर्य समाज ने ले लिया है-विधवाओं का पुनर्विवाह करना, भंगी चमारों को जनेऊ देकर साथमें खानपान व्याहशादी करना, मुर्दे की लाश को व मुर्दे की भस्म को खेतों में डालना टट्टी पेशाब का इन्तजाम रखना कि कौन टट्टी जाता है, कौन नहीं, किसके घर टट्टी है, किसके घर नहीं, इत्यादि महा नीच कर्मों से समाजी भाइयो! भारत का उद्धार नहीं होगा। केवल ईश्वर के भजन से और सत्कर्मों से मनुष्य की सद्गति होती है। सो आप लोग इस वृथा कपोल कल्पित आर्यसमाज को छोड़ कर श्रीसनातन धर्म की सेवा कीजिये जिसमें तुम्हारा उद्धार हो॥ ह० गौरी लाल सूर्यमल-ब्यावर

सत्यार्थ प्रकाश ३ समुल्लास पृष्ठ ७९ ऋषि प्रणीत ग्रन्थों को इस लिये पढ़ना चाहिये, वह बड़े विद्वान् सर्वशास्त्रवित् थे, और धर्मात्मा थे जिन की

आत्मा पक्षपात सहित है, जिन के बनाये ग्रन्थ भी वैसे ही हैं पूर्वमीमांसा आदि कई ग्रन्थ और उनके भाष्य ऋषि प्रणीत हैं। -४ चारोंवेद स्वतः प्रमाण और ईश्वर कृत हैं वैसे ही ऐतरेय, शत पथ गोपथ, साम, चारों ब्राह्मण। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघंटु निरुक्त आदि कई और भी ग्रंथ ऋषि प्रणीत माने हैं-

फिर लिखा है कि इन में भी जो वेद विरुद्ध प्रतीत हो उस को छोड़ देना चाहिये इति। यह सत्यार्थ प्रकाश का लेख है। १-आपने ऋषिप्रणीत मानकर उन्हीं को अमाननीय क्यों ठहराया क्या, ४ चारों संहिताओं से प्रमाण निकाल कर आर्य्यसमाजी उत्तर दे सकते हैं ?।

२-आपका लेख है जो वेद विरुद्ध प्रतीत हो, उसको विषवत् त्याग देना चाहिये जैसे दूधमें संखिया मिला होने से दुग्ध त्याज्य है। क्या दयानन्द जी के बनाये सत्यार्थ प्रकाश में अशुद्धता और वेद विरुद्धता नहींहै ? जो कई वार बनाया बिगाड़ा गया इस से सत्यना पूर्वक सत्यार्थ प्रकाश को छोड़ देवें। अन्यथा उत्तर देवें। ३-आप ने लिखा है कि जो वेद विरुद्ध अर्थात् जिस का प्रमाण वेदसे नहीं पाया जाता, (चारों संहिताओं में नहीं) वह मानना। ४ संहिताओं में सध्या करना कहां लिखा है ?। कोई वेदमन्त्र प्रमाण दे सकते हो वा नहीं ? यदि चारों संहिता में इत्यादि वातों का प्रमाण नहीं हो तो उत्तर दीजिये। ४-स्वामी जी की बनाई सन्ध्या विधि में शन्नोदेवी आचमन का मन्त्र लिखा वह किस प्रमाण से ? क्या किसी और मन्त्र से आचमन नहीं हो सकता ? क्या इस मन्त्र में आचमन का अर्थ स्वामिकृत भाष्य से मिलता है ? आचमन किस को कहतेहैं? आचमन का क्या अर्थ है, कितने जल से आचमन करना लिखा है? फिर ३ वार क्यों करना ! एक वार आधी घंटी पीकर क्यों नहीं आचमन होता ? पक्षपात को छोड़ कर उत्तर दे सकते हो क्या ?

५ सन्ध्या में इन्द्रिय स्पर्श करना लिखा है सो चारों वेदों की संहिता में कहीं प्रमाण मिला है वा नहीं, यह मन्त्र चारो संहिता में से किसी संहिता का है वा नहीं ?

६ मार्जन करना किस संहिता में लिखा है ? मार्जन मन्त्र किस संहिता के हैं यदि आलस्य दूर करने के लिये हो तो दो अञ्जुली जल से मुख धो डालना चाहिये इसका क्या उत्तर है !

७ सन्ध्या में मनसापरिक्रमा लिखी है वह परिक्रमा किस की है ! परिक्रमा नाम चारों तरफ घूमने का है। मन करके किसके चारों तरफ घूमें इस से सिद्ध होता है कि स्वामी जीने किसी मूर्त्ति की मनसा परिक्रमा बताई है। यदि

ऐसा नहीं तो क्या उत्तर हो सकता है ! प्रदक्षिणा के मन्त्रों से साकार सगुण ब्रह्म सिद्ध होता है वा नहीं !

क्या इन ७ प्रश्नोंके उत्तर सत्यता पूर्वक दयानन्दमतानुयायी आर्यदेसक्तेहै ?

पं०—भागीरथ स्वामी वैद्य अनाथ औषधालय फर्रुखाबाद—

मु० ब्यावर जिला अजमेर की श्री सनातनधर्म प्रकाश बालसभा के मन्त्री गौरीलाल वैश्य अग्रवाल की बनाई हुई पं० भीमसेन शर्मा द्वारा संशोधन करा कर ब्रह्मप्रेस इटावा में छपाई हुई तीन पुस्तक इस प्रकार हैं। एक "श्री सनातनधर्म भजनावली" जिसमें ईश्वर विषय के तथा देश विषय के तथा गप्पमत खण्डन विषय के भजन हैं। मूल्य)॥ दूसरी "श्री सनातनधर्म फागुनविनोद" जिसमें फागुन की राहमें भजन स्त्री शिक्षा, पुरुष शिक्षा, बाल-शिक्षा, जातीहित देशहित तथा ईश्वर विषय के तथा गप्प मत खण्डन के भजन हैं। कीमत)॥ तीसरी "श्री सनातनधर्म शिक्षा प्रश्नोत्तर" जिसमें प्रश्नो-त्तर द्वारा वेद, पुराण, शास्त्र इत्यादि धर्मग्रन्थों तथा देव पूजन मूर्ति तीर्थ श्राद्धादिक कर्मों की तथा जिसमें अनेक बातों की शिक्षा इत्यादि की गईहै। यह पुस्तक विशेष कर पाठशालाओं के विद्यार्थियों के लिये प्रथम पढ़ने की चीज़ है जिससे अपने सनातन धर्मके वास्तविक स्वरूप को पहचान कर धर्म भ्रष्ट न हो, यूं तो यह पुस्तक पांच वर्ष के बच्चे से लेकर १०० वर्ष के वृद्ध तक को रखनी चाहिये जिस को कि अपने धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं, ऐसी अमूल्य पुस्तक की कीमत)। २४ पृष्ठों की पुस्तक है। विशेष लेने से ५) रुपये सैकड़ा कमीशन भी मिलेगा। हमको इन पुस्तकों से कुछ भी फायदा नहीं, इस बात को पं० भीमसेन जी जानते हैं क्योंकि उन्हों ही ने छापी हैं, जितना खर्चा लगा हमको सिर्फ धर्म प्रचार से मतलब है ॥

सम्पादकीय सम्मति—

सनातन धर्म की रक्षा और उन्नति चाहने वाले भगवान् के भक्त सनातन धर्म के प्रेमी महाशयों को ऊपर लिखे तीनों ही पुस्तक देखने और मगाने चाहिये। यह भी स्मरण रहे कि इन पुस्तकों का जो कुछ मूल्य ग्राहक लोग देंगे, वह सभी सनातनधर्म सभा ब्यावर के धर्म के कामों में लगेगा इस कारण जानो आप लोगों ने मूल्य देकर तो धर्म का भाग लिया अर्थात् दान धर्म के फल भागी हुए और पुस्तक आप को मिले, वे सब मुफ़ में लाभ हुआ और उन पुस्तकों से आगे २ जो धर्म का प्रचार होगा यह तीसरा लाभ है। यद्यपि तीनों ही पुस्तक अच्छे उपकारी हैं तथापि "सनातन धर्म शिक्षा

प्रश्नोत्तर" यह पुस्तक अत्यन्त उपकारी है। इसमें जो कुछ त्रुटि समझी गयीं, वे भी अधिकांश हमने शोध सम्हाल दी हैं जिस से पुस्तक बहुत अच्छा हो गया है। इस से चार २ वा आठ २ आने के पुस्तक सभी ग्राहक मगावें यह हमारी सम्मति है ॥ ह० भी० श० सम्पादक ब्रा० स० इटावा

समाचार

मुक़ाम धौलाना श्रावण शुक्ला पञ्चमी को मुरारीलाल आर्यसमाजी सिकन्दराबाद निवासी ने आठ दश लड़के दस्से बनियों के और ३ राजपूतों को यज्ञोपवीत दिया पं० मुकुन्दीलाल ने पञ्चायत की चर्चा सुनकर जानेसे इनकार किया। नानक तिवारी उक्त कार्य में शामिल रहे। और कोई ब्राह्मण नहीं गया, पञ्चायत के समय तीन चार सौ मनुष्यों के सन्मुख चिरञ्जीलाल व गुलजारी सिंह व हरीसिंह ने कहा कि हमारे लड़के हमारी अनुमति से समाजी नहीं हुए, यदि वह १५ दिन में समाज को हमारे कहने से न त्यागेंगे, तो हम उनको अलग कर देंगे। नानक तिवारी बिरादरी से अलग किये गये, पुनः रात्री को पं० हरवंश लाल जी के मकान पर पञ्चायत हुई जिसमें पांच छः सौ आदमी उपस्थित थे, नानक तिवारी ने क्षमा चाही, सब पञ्चों ने १) दण्ड का लेकर भारतधर्म महामण्डल को भेजा और पुनः संस्कार करा प्रायश्चित कराया और गङ्गा स्नान करा, पंक्ति में लिया ॥ उसी समय विलायती खांड का माल न बेचने का प्रबन्ध किया और यह बात नियत हुई कि जो दूकानदार उक्त खांड का माल बेचेगा ५०) रु० दण्ड और बिरादरी से अलग किया जायगा ॥

श्रीदत्त शर्मा स्थान धौलाना जि० मेरठ

श्री सद्धर्म्मोपदेशक सभा मुलतान की प्रधान संस्कृत पाठशाला के वास्ते १ अध्यापक की आवश्यकता है, जो शास्त्री परीक्षा में पास हो अथवा योग्यता रखता हो। व्याख्यान देने तथा कथा बांचने का भी अभ्यास रखता हो। पद प्रार्थी गण निम्न पते पर अपनी २ अर्जी तथा सार्टीफिकटादि भेजें मासिक वेतन योग्यतानुसार २०) रु० से २५) रु० तक दिया जावेगा ॥

२) श्री सद्धर्म्मोपदेशक सभा मुलतान की भजन मण्डली स० ध० मत मण्डन और आर्यसमाज मत खण्डन के उत्तम २ रसीले मनोहर भजन गाकर लोगों के चित्तों को आल्हादित करती है लवपुर, सूर्यलोक, मुज़फ़्फ़रगढ़, डेरास्माईलखां आदि नगरों में स० ध० सभा के वार्षिकोत्सवों पर नाम पा चुकी है जिसका हाल समाचार पत्रों में भी छापा जा चुका है। यदि कोई सभा अपने वार्षिकोत्सव पर बुलाना चाहे तो निम्न पते पर पत्र व्यवहार करें केवल आने जाने का किराया देना होगा ॥

सद्धर्मोपदेशक सभा आज कल अच्छा काम कर रही है सभा की तरफ़ से पुस्तकालय भी स्थापित किया गया है जिसमें ६ समाचार पत्र भी आते हैं, १ पाठशाला भी खुली हुई है, जिसमें ३० विद्यार्थी पढ़ते हैं और ३ अध्यापक अवैतनिक पढ़ाते हैं, यही सभा प्रत्येक वर्ष आर्यसमाज के धर्म चर्चा के समय में सुख मर्दन करती है।

रघुनाथदत्त शर्मा मन्त्री सद्धर्मोपदेशक सभा मुलतान–

भजन मण्डली ॥

सर्वमहाशयों को विदित होकि आजकल दयानन्दी लोग ऊटपटांग भजन गाकर अपने जलसों के समय सूधे सनातनधर्मियों के चित्तों को बनावटी कोशिश से खेंचते हैं। दयानन्दियों की पोल खोलने वाले व्याख्यान तो धर्म-सभाओं में होते ही हैं, परन्तु उन के भजनों का भी मुखमर्दन होना आवश्यक है, इसी कारण हम ने एक उत्तम भजनमण्डली और पुस्तकें तयार कर ली हैं, सभाओं के उत्सव और विवाहादि के समय जो लोग बुलाना और पुस्तकें मंगाना चाहैं वह नीचे लिखे पते से पत्र भेजें ॥

पता—भवानीदत्त ज्योशी कूर्मांचलीय सनातनधर्म भजनोपदेशक मुकाम–चन्दौसी–जि० मुरादाबाद

ता० १६ अगस्त से ता० १९ तक प्रान्त बराड बरधा टौन हालमें स्वामी आलाराम सागर जीने चार व्याख्यान दिये। हिन्दू धर्म सूर्यका उजाला होगया, नवीन मत खद्योतों का अत्यन्ताभाव हुआ। जिला बरधा पुलगांव कृष्ण मन्दिर में स्वामी जी के दो व्याख्यान हुए। हिन्दूधर्म केशरीसिंह वेदान्त विद्यारूपी गर्जना करता रहा, नवीन मत गीदड़ों का गप्परूपी हल्ला सर्वथा अदर्शन होगया, अब स्वामी जी बुलन्दशहर में हिन्दूधर्म का वर्णन कर रहे हैं।

आप का शुभचिन्तक निराकार शर्मा

सागर जी ने व्याख्यान दिया ता० १० सितम्बर से भूमिहार ब्राह्मण कालेज में श्रीस्वामी जी नें सनातन हिन्दूधर्म की सचाई पर व्याख्यान दिया अब सम्भावना है कि पूर्वोक्त कालिज में श्रीस्वामी जी के चार पांच और भी व्याख्यान होंगे, श्रवण करने का उत्साह श्रोता लोगों का है। पश्चात् गो रक्षा पर वेदोक्त व्याख्यान होंगे। जिनमें राजा और प्रजा को वेद आदि के प्रमाणों से गोरक्षा का लाभ दर्शाया जायगा ॥

अर्जुनदास सेक्रेटरी पिंजरापोल मुज़फ्फरपुर

धनौरा जि० मुरादाबाद का वार्षिकोत्सव २७ अगस्त से ३१ अगस्त तक बड़ी धूमधाम से हुआ। पण्डितों के प्रभावशाली व्याख्यानों के प्रभाव पड़नेसे आर्यसमाज के प्रधान पं० रामनारायण शर्मा ने आर्यसमाज को तिलाञ्जलि देकर धर्म सभा में उपस्थित होकर व्याख्यान दे, अपनी भूल स्वीकार कर सनातनवैदिकधर्म की शरण ली। साथ ही में मन्त्री आर्यसमाज पं० रामजीमल ने भी इस्तेफा देदिया, हम इन सज्जन पुरुषों को कोटिशः धन्यवाद देते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि शेष आर्यसमाज भी अपनी भूल स्वीकार करलें तो भारतवर्ष की बहुत कुछ उन्नति हो ॥

मन्त्री बल्देवसहाय धनौरा ज़ि० मुरादाबाद

पाठकगण ! हम अन्यान्य मत होने से विरोध नहीं करते सर्वथा भगवद्गीता का (यदा यदाहि धर्म्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !) वाक्य को सार्थक समझते हैं तौभी नूतन मतदयानन्दियों का दुराचार देखकर खेद के साथ लिखनाही पड़ता है कि जो लोग दयानंदियों का शृङ्ग पुच्छ तक नहीं पहिचानते थे, वेही आज थोड़े दिनों से धर्म्म को शृगों से भगारहे हैं। मेले तथा ग्रामादिकों में जाजा कर अनपढ़े बेचारों को बहका कर कुटुम्ब में कलह करवा रहे हैं। माता पिता की दुर्दशा हो रही है। यों कहो कि माता पितादिकों को धक्का देना ही उन का परम कर्त्तव्य है। ऐसे विषय पर हर्ष भी दिखाना अवश्य है कि जब से ब्रा० स० पत्र हर एक महिने में दण्डधारणकर यमराज के रूप से निकलता है तब से अधर्म्मियों को भगाकर ठोकरें खिला रहा है। जहां तहां समाजियों की ढोल की पोल को खोलकर धर्म की तोल को बढ़ाकर समाजी डमा डोल हो गये हैं। ब्रा० स० की ध्वनि को सुनकर शरमिन्दा होकर मुंह नीचा किये बैठ जाते हैं। नियोग का विषय चलने पर तो मौन तपस्वी होकर एकान्त को चले जाते हैं। हम ब्रा०स० को उक्त प्रमाण मुताबिक परमेश्वर का एक अंश (अवतार) मानें तो कुछ अनुचित नहीं, परन्तु शोक का स्थल है कि हमारा प्रदेश अविद्या के कारण अपने सत्य सनातन धर्म्म को नहीं पहचानता अतः हमारी मनसा एक संस्कृत पाठशाला खोलने की है जिस के लिये बहुत सभ्य जनों की सहायता लेनी अवश्य है और एक भजन मंडली भी यहां स्थापित होना चाहिये, अतः उक्त दो कामों के लिये जिन श्रद्धापात्रों को द्रव्य तथा पुस्तक देना अंगीकार हो, वे निम्न लिखित पते से सहायता देकर धर्म्म का प्रति पालन करें। अलम्

पं० प्रेमवल्लभ जोशी

जस्पुर चौकोट अल्मोडा पो० देघाट

श्री सनातन धर्म सभा खुर्जा का वार्षिकोत्सव बड़े आनंद से समाप्त हो गया। भारत के बड़े २ प्रसिद्ध वक्ता पधारे थे, श्रीमान् पण्डित दीनदयाल जी आदि बड़े २ विद्वान् पधारे थे, पांच रोज राज राजेश्वर की जय मनाते हुए आनंद से सभा होती रही। श्रीमान् चौधरी साहब रईश शिकारपुर अपने सरदारों सहित पधारे और आपने २००) सभा की भेंट की और २५) श्रीमान् लाला ईश्वरदयाल जी रईस भटवारा, रायबहादुर लाला नत्थीमल ने कवि-शंकर की कविता सुन १ दुशाला भेंट किया। एक सज्जन पुरुष ऋषि कुलके लिये ५०००) दान करने को कहते हैं और इस आश्रम के खोलने का इरादा करते हैं परमात्मा आप को सफलता दे। इस में १ ऋग्वेद समस्त लाला सुखा नंद जी श्यामलाल ने भेंट किया १ वेद समस्त अथर्वेद श्रीमान् सेठ दरसहा-यमल के पुत्र लाला गोवर्धनदास ने दान किया। श्री वेंकटेश्वर प्रेस के मालिक सेठ खेमराज जी के पुत्र रंगनाथ जी ने भी सभा को सुशोभित किया और १००) रु० की पुस्तकें दान किया इस लिये इन सब महाशयों को अनेक धन्यवाद हैं। पण्डित रामस्वरूप शर्मा वैद्य महामन्त्री का प्रबंध सराहनीय था क्यों न हो सब सभा के मध्यमें पंडित दीनदयाल जी ने कहा कि हम को किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ २०० डेली गेटों को समय पर सब सामान पहुंचता था और मन्त्री महाशय एक दीन ब्राह्मण उत्साही सज्जन हैं, परमात्मा आप का उत्साह इसी प्रकार बनाये रहै और आप का मंगल हो अनुमान ८००० आदमी रोज़ बैठते थे ऐसा महान् उत्सव यहां कभी नहीं हुआ, अन्त में राय-बहादुर लाला नत्थीमल ने जो १०००००) रुपया लगाकर स्कूल बनायाहै, उस में सभा हुई और उस स्कूल को आप ने पबलिक को भेंट कर दिया ऐसे विद्या प्रेमी के प्रेम पर पबलिक को अवश्य ध्यान करना चाहिये। अलम्

प्रभुदयाल पुस्तकाध्यक्ष सनातनधर्म सभा खुरजा

विदित हो कि प० बाबूराम जी शर्मा महोपदेशक भारत धर्ममहामंडल बनारस से १९ अगस्त को नजफगढ़ पधारे ५ दिन तक ईश्वरभक्ति अवतार श्राद्ध, मूर्त्तिपूजा गंगामहिमा पातिव्रत आदि विषयों पर अत्यन्त प्रभावशाली व्याख्यान दिये अन्त के दिन मोरिसखांड की अपवित्रता सिद्ध की पंचायत द्वारा हिन्दू मुसल्मानों ने इस का परित्याग किया। आढ़तियों और हलवा-इयों ने भी इस के व्यवहार न करने को प्रण किया मौजूदा खांड व मिठाई के अलैदगी को १ हफते की मुहलत दी गई ईश्वर इस प्रण को पूरा करावे॥

पं० रामरक्षपाल पें०—सब ओवरसियर नजफगढ़ जि०—देहली

आ० स० का मूल्य प्राप्ति स्वीकार १८ मई से २४ जुलाई तक.

१४०५ पं०वल्लभरामतिवारी रसूलपुर २॥)
१४०४ बा० लक्ष्मीनारायण हर्दा २।
९६७ पं०शिवनारायणशर्मापिशागिन२।)
१३१० पं० शक्तिप्रसाद पटियाला २।)
१४०७श्रीगोविन्दरामविद्यार्थीभगोड़ २)
१४०६ पं० रामप्रपन्नाचार्य वृन्दावन २।)
१४०८ परमहंस शिवानन्द खंभात २।)
६४५ पं० दीपविलास शर्मा बरेवा २।)
१३९२ हरिप्रसादउपाध्याय गंगापुर २।)
८६४ बा० कृष्णदेवनारायण
लहेरिया सराय २।)
५१९ बा० खैरातीलाल जारचा २।)
१९६पं०नारायणदत्तपन्त पुनवानौला२)
४९९ बा० नारायणप्रसाद खंडवा २।)
१४१० पं०ब्रह्मदत्तशर्मा हरदिया २।)
१४०६श्रीमेलाभाईजगुभाई अमलसार २।)
३२८ श्री उमरावसिंहजीमं० रुड़की २।)
२४० पं०रामचरणजीमं० लखीमपुर २।)
१५९ पं० बालगोविन्द तिवारीआरा २।)
४६३ बा० गंगाप्रसाद चिमन २।)
१४३४ बा० लक्ष्मणदास मानपुर २।)
३३६ पालिया-राघोवारतिरामसावनेर२।)
११७० कौशलेशनायणशुक्ल कानपुर २।)
१८१ पं० रतनलालशर्माबुलन्दशहर २।-)
१२७७ बा० गौरीनन्दन संगोल ॥।)
१६ श्रीमोतीरामसांवलराम कनोद २।)
८रा०रा०बालाजीशिवप्रसादमुम्बई२।-)
३०० पं० मुकुन्दराम जी सम्भल २।-)
३१७ श्रीमान् महाराजा वल्लभदास
द्वारकादास मांडवी २।)
३६ श्रीसीतारामसास्टरलखीमपुर २।)

४५७ श्रीमूलजीभानजीदलाल मुम्बई२।)
३६६ पं० गंगाराम जी मुज़फ़्फ़रगढ़ २।)
७९ बा०गणपतसिंहवर्म्मा बड़ोदा २।)
४२८ श्रीलीलानन्दजोशीनैनीताल २।)
४३३ पं० हरिप्रसादजी खण्डवा २।)
४५२ पं०शिवचरणलालशर्मानागपुर २।)
४५४महन्तगोतमदाससिवरीनारायण२।)
५२६ जैजैरामशिवशंकरसरायप्रयाग २।)
२५३ पं०कुन्दनलाल शर्मा मंसूरी २॥)
४३० बा०मथुरादासठाकरसीमुम्बई २।)
३१२ पं०मुत्सद्दीलाल अफज़लगढ़ २।)
४४३ श्रीबा०माधवरावजीनरसिंहपुर २।)
१४१५ पं० हरसहायपाठकमुहम्मदी २।)
१८८ पं० जौहरीलाल बुलन्दशहर १॥)
५६६ पं०गौरीशंकरशास्त्रीबिलासपुर १।)
१४१६ गिरधारीलालमूलजी राणपुर २।)
६१९ श्री शीतलाप्रसाद लावना २।)
२६७ ठा० लायकसिंहजीहजरतगंज २।-)
१४१७ पं० रामनाथजी तिलहर २।)
४९५ पं०यमुनादत्तशर्मा सहारनपुर २।)
१९८ पं० गिरधारीलाल सरायमीरा १)
२७२ श्री गुलजारीलाल हलद्वानी २।)
१४१८भवानीशङ्करमणिशङ्कर आमोद२।)
१२९६ पं० मुन्नालाल हरगनपुर २।)
१४२० दयाराम थावरदासठठासिंध २।)
९८४ पं० रामजीदासशर्माज्वालापुर २)
१४२१ चौधरी लक्ष्मणसिंह कौवा २।)
१४२२बा०लक्ष्मीनारायणहिंडोनरोड २।)
६५५ बा० लद्धाराम लई कलकत्ता २।)
५०७पं०द्वारकाप्रसादमिश्रभगवन्तनगर१॥)
४८५ बा० नारायणवर्म्मा नासवाला २।)

REGISTERED NO. A. 242
ब्रा०स० सम्बन्धी पत्रादि पं० भीमसेनशर्मा सम्पादक ब्रा०स० इटावा के पते से भेजिये

श्रीगणेशायनमः ॥

ब्राह्मणसर्वस्व

THE BRAHMAN SARVASWA

आर्य्यम्मन्यसदार्य्यकार्यविरहा आर्य्यास्त्रयीशत्रव,
स्तेषांमोहमहान्धकारजनिता-ऽविद्याजगद्विस्तृता।
तन्नाशायसनातनस्यसुहृदो धर्मस्यसंसिद्धये,
ब्रादिस्वान्तमिदंसुपत्रममलं निस्सार्य्यतेमासिकम् ॥
धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांस्वपदप्रवाच्यम्।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात्॥

भाग ४] मासिकपत्र मासाङ्क [अंक १०

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः
पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

पं० भीमसेन शर्मा द्वारा सम्पादित होकर
ब्रह्म-यन्त्रालय-इटावा में
मुद्रित होकर प्रकाशित होता है ॥
संवत् १९६३ वि० अक्टूबर सन् १९०६ ई०

विषयः—१-मङ्गलाचरण स्तुति प्रार्थना। २-स्मार्त्तधर्ममीमांसा। ३-दैवतमीमांसा। ४-प्रेरितलेख (सदा के लिये मुक्ति)। ५-(वन्देमातरम्)। ६-स्वदेशी आन्दोलन। ७-कांग्रेस। ८-समाचार। ९-रेलवे कम्पनी। १०-विज्ञापन। ११-सूचना ॥

ब्राह्मणसर्वस्व का अगाऊ वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित २) है

ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ॥

१–यह मासिकपत्र साढ़े छः फारम ५२ पेज रायल सायज का प्रतिमास की अन्तिम तारीख़ को निकलता है ॥

२–इस का वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित बाहर के ग्राहकों से २।) सवा दो रुपया अगाऊ और इटावे के ग्राहकों से २) लिया जाता है ॥

३–अगला अंक पहुंच जाने पर पिछला न पहुंचने की सूचना जो ग्राहक लिखेंगे उनको पिछला अंक विना मूल्य फिर से भेजा जायगा। देर होने पर दुबारा अंक =) प्रति के हिसाब से मिलेंगे।

४–राजा रईस लोगों से उन के गौरवार्थ ५) वार्षिक मूल्य लिया जायगा ॥

५–जो पहिला अंक नमूना का मंगावें वे ≡) के टिकट भेजें वा।) का वी० पी मगावें यदि वे ग्राहक होंगे तो उनको नियत मूल्य में ≡) मुजरा दिया जायगा।

६)–मूल्य भेजते समय ग्राहक लोग अपना नम्बर अवश्य लिखा करें। चिट्ठी पत्री नागरी वा अंगरेज़ी में भेजा करें उर्दू के हम उत्तर दाता नहीं हैं।

७–कहीं बदली आदि के कारण स्थानान्तर में जावें तो अपना पता अवश्य बदलवावें। अन्यथा अंक पहुंचने के उत्तरदाता हम न होंगे॥

८–जो ग्राहक लोक अन्य ग्राहक करावेंगे उन को यथोचित कमीशन मिलेगा और १० ग्राहक कराने वाले को १ मासिक पत्र विना दाम मिला करेगा।

विज्ञापन छपाने बंटाने के लिये नियम ॥

१–जो विज्ञापन ब्रा०स० में छपें वा बांटे जावें उन के सत्य मिथ्या होने के उत्तरदाता विज्ञापन वाले ही समझे जायगे। ग्राहक शोच समझ के व्यवहार करें।

२–ब्रा०स० में एक वार कोई विज्ञापन एक १ पेज से कम छपावे तो =)॥ लैन के हिसाब से लिया जायगा। तीन मास तक =)। ६ मास तक =) एक वर्ष तक -)॥ प्रति पङ्क्ति प्रतिमास लगेगा।

३–एक वार एक पेज पूरा छपाने पर ३) लगेगा। १ पेज का तीन मास तक ७) छः मास तक १२) और १ वर्ष तक २:) लगेगा।

४–जिस किसी को विज्ञापन बंटाना हो वह ब्रा० स० के दफ्तर से पूछकर ब्रा० स० का क्रोड़पत्र और तारीख़ छापनी चाहिये। बांटने के लिये जो विज्ञापन छपाये जावें उन में कानून गवर्नमेंगट के नियमानुसार समाचार आधे विज्ञापन में वा कुछ कम हिस्से में अवश्य होने चाहिये। स्मरण रहे कि जिस में ब्रा० स० का क्रोड़ पत्र मय तारीख़ नहो तथा समाचार न छपे हों वह नहीं बांटा जायगा। ४ मासे तक का विज्ञापन ४) में ८ मासे तक का ५) में, और १ एक तोला तक का ६) में बांटा जायगा। रु० छपाई और विज्ञापन बंटाई का पहिले लिया जायगा ॥

श्रीगणेशायनमः ॥

ब्राह्मणसर्वस्व

भाग ४] उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत [अङ्क १०

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्माब्रह्मददातु मे ॥

मङ्गलाचरणम् ॥

अपानतिप्राणति पुरुषोगर्भेअन्तरा ।
यदात्वंप्राणजिन्व–स्यथसजायतेपुनः ॥ १४ ॥

अ०–गर्भेअन्तरा गर्भमध्ये मातुरुदरे विद्यमानः पुरुषो मनुष्यः पूर्णाङ्गोपाङ्गः सन् सूक्ष्मवायुनिःसरणरूपेणापानति प्राणति च । हे प्राण ! तदानीं मातुरुदरेऽपि त्वमेव गर्भस्थं जीवयसि। अन्तरेणापानप्राणने न कदापि जीवेत्। हे प्राण ! यदा त्वं गर्भे पुरुषं जिन्वसि तर्पयसि बहिर्निस्सरणयोग्यं पुष्यसि बाह्यवायुना जीवनयोग्यं संपादयसि । अथ–अनन्तरं तदानीं स गर्भस्थः प्राणी पुनर्जायते पूर्वजन्मवत्पुनरपि गर्भाशयाद्बहिर्निःसरति । हे प्राण ! तस्मै तुभ्यं नमइति पूर्वेणान्वयः ॥

भा०–जरायुणामुखेछन्ने कण्ठेचकफवेष्टिते ।
वायोर्मार्गनिरोधाच्च नगर्भस्थःप्ररोदिति ॥ १ ॥
निःश्वासोच्छ्वाससंक्षोभ–स्वप्नान्गर्भोऽधिगच्छति ।
मातुर्निःश्वसितोच्छ्वास संक्षोभस्वप्नसंभवान् ॥ २ ॥

सुश्रुते शारीरस्थाने अ० २। एतत्कथनं च वेदाशयमेव विवृणोति। गर्भाशयान्निःसरणानन्तरं तादृश आवृतस्थाने प्राणिनो जीवनमसम्भवं प्रतीयते। तस्मादेवं दुर्घटस्थाने यो जीवयति तस्य प्राणेश्वरस्याचिन्त्या शक्तिः। तस्माच्च स्थानात्सकुशलं निःस्सरणमपि नास्मदधीनमपितु यदधीनं सएवोपास्यइत्याशयः ॥

भाषार्थः—(गर्भेअन्तरा) माता के उदरस्थ गर्भाशय के बीच विद्यमान (पुरुषः) मनुष्य पूर्ण साङ्गोपाङ्ग बन के तयार हो जाने पर (अपानति प्राणाति) भीतर बाहर को श्वास लेता छोड़ता तथा गुदेन्द्रिय से अपानवायु भी छोड़ता है। हे प्राण ! उस समय माता के उदर में भी गर्भस्थ प्राणी को तुम ही जीवित रखते हो। क्योंकि योगाभ्यास के असंप्रज्ञात समाधि से भिन्न समय में प्राण अपान की चेष्टा हुए विना कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता। हे (प्राण यदा, त्वं जिन्वसि) प्राणेश्वर जब तुम बाहर निकलने योग्य गर्भस्थ प्राणी को कर देते हो, जब बाहरी वायु से जीवित रहने योग्य हृष्ट पुष्ट गर्भ प्राण की चेष्टा से हो जाता है, (अथ स पुनर्जायते) उसके पश्चात् वह बच्चा पूर्व जन्मों के तुल्य फिर भी माता के पेट से प्रकट होता बाहर निकलता है। हे प्राणेश्वर ! ऐसी विलक्षण शक्ति वाले तुम को हम लोग बार २ नमस्कार प्रणाम करते हैं ॥

भा०—आयुर्वेद सुश्रुत ग्रन्थ के शारीर स्थान में लिखा है कि " जरायु से मुख के ढंपे होने, और कण्ठ में कफ भरा होने तथा स्थूल वायु निकलने का मार्ग रुका होने से गर्भस्थ बच्चा रोता नहीं, परन्तु माता के सांस लेने के साथ सांस लेता, उसके डरने के साथ डरता और माता को स्वप्न दीखने के साथ स्वप्न देखता है। सुश्रुत का यह कथन वेद के ही अभिप्राय को प्रकाशित करता है। गर्भाशय से निकल आने पर उसी प्रकार के बन्द स्थान में प्राणी का जीवित रह सकना असम्भव प्रतीत होता है। तिस से ऐसे दुर्घट स्थान में जो जीवित रखता है उस प्राण नाम रूप परमात्मा की शक्ति अचिन्त्य है। उस दुर्घट स्थान से कुशल पूर्वक बाहर निकल आना भी हम मनुष्यों के आधीन नहीं है। किन्तु जिसके आधीन है वही प्राणेश्वर उपासना के योग्य है, यही वेद का आशय जानो ॥

ब्रा० स०भा०४ अं०९ पृ०४००से आगे स्मार्त्तधर्म्म मीमांसा॥

इसी के अनुसार वरुण देवता आधिदैविक ही हैं उनसे पैदा हुए आधिदैविक भृगु ऋषि इन आधिभौतिक भृगु से भिन्न हैं कि जिन का वेद मन्त्रों और श्रुतियों में वर्णन आया है। द्वितीय विचार यह भी है कि एकही वस्तु भिन्न २ कालों में भिन्न २ कारणोपाधियों से प्रकट होने के कारण कई के पुत्र भी माने जावें तब भी कोई विरोध नहीं आसकता। जैसे कि विष्णु भगवान् त्रेता युग में महाराजा दशरथ के यहां रामनाम रूप से प्रकट हुये तब उन के पिता दशरथ कहे गये। तथा द्वापर में वे ही विष्णु भगवान् वसुदेव जी के घर में प्रकट हुए तब वसुदेव के पुत्र कहाये। क्या विष्णु भगवान् को कहीं दशरथ का पुत्र और कहीं वसुदेव का पुत्र श्रीमद्भागवत तथा वाल्मीकीय रामायण में लिखा हो तो, मधु सू० गोस्वामी इस लेख को भी परस्पर विरुद्ध कहें व लिखेंगे ?।

इसी के अनुसार भृगु जी भी एक सिद्ध पुरुष हैं। जिन की प्रशंसा योगिराजों में परिगणित मानी जावेगी।

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयंशरीरम् ॥

योगाग्निमय शरीर को प्राप्त हुए सिद्ध योगी पुरुषों को रोग, बुढ़ापा, तथा मृत्यु नहीं दबा सकता। इस से वे लोग जब २ जिस २ कार्यवश प्रकट होना चाहते हैं, तब २ भिन्न २ पिता माता से प्रकट होने के कारण वे अनेकों के पुत्र कहे माने जाते हैं। जो कभी रावण कुम्भकर्ण हुए थे, वे ही पीछे शिशुपाल दन्त वक्र भी हुए। जिन का मुख्य कर्त्तव्य वा सिद्धान्त यही था कि-

अस्माकंखल्विमेलोकाः के देवाःके द्विजातयः ॥

ये सब लोक वा देश का राज्य हमारा है। देवता और ब्राह्मण हैं ही क्या ? अर्थात् कुछ भी नहीं, हम जो चाहें कर सकते हैं। भूमण्डल पर बार २ उन्ही रावणादि असुरों ने भिन्न २ रूप धारण कर २ मुख्य गौ ब्राह्मण को सताना ही अपना परम कर्त्तव्य समझा। हमारी राय में आज कल रावण कुम्भकर्णादि ने लाखों क्रोडों रूप धारण किये हुए हैं कि जो अहर्निश गौ ब्राह्मणों की महा दुर्दशा हो रही है और प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। और पाठक महाशय ! आप लोग यह अवश्य ध्यान में रखिये कि विष्णुभगवान् की देवोत्थानी एकादशी प्रतिवर्ष होती है अर्थात् देवता लोग प्रतिवर्ष सोते और जागते हैं। हमारा विश्वास है कि किसी देवोत्थानी एका-

दशी को देव जागने ही वाले हैं। भगवान् गोविन्द गोपाल आदि नामों वाले हैं वे सबके घट २ में विद्यमान भी हैं, किसी एक दो वा अनेक देशहितैषियों के हृदयों में स्फुरित हो कर सभा सुसाइटी कांग्रेस आदि नामरूप से भारतवर्ष का अवश्य उद्धार करेंगे। गोवंश पर आई हुई महाविपत्ति का ख्याल सर्वव्यापी विष्णुभगवान् को अवश्य होगा। क्योंकि वे गौओं की रक्षा करके ही गोपाल बनचुके हैं। सो पाठकगण! आप यह न समझ बैठें कि ऋषि, देव, असुर आदि खास २ व्यक्ति ही अनेक माता पिता के यहां जन्म ले २ कर अनेकों के पुत्र कहाते हैं। और वास्तव में किसी का भी न कोई पुत्र बनता और न कोई किसी का पिता बनता है। किन्तु यही बात हम आप सब में पूर्णरूप से घट जाती है कि–

नानायोनिसहस्राणि मयोषितानियानिवै।
मातरोविविधादृष्टाः पितरःसुहृदस्तथा ॥

यह वैदिक बचन निरुक्त के परिशिष्ट और गर्भोपनिषदादि में मिलता है कि हम प्रत्येक जीव अनेक योनियों में वार २ जन्म ले २ कर अनेक माता पिताओं को वार वार देखते हैं, अनेकों के पुत्र कहाते हैं। इस से एक एक प्राणी के अनेक पिता और वह अनेकों का पुत्र होता, यह बात शास्त्र और लोक दोनों से सिद्ध है। क्या हमारे गोस्वामी अपने को अनेकों का पुत्र मानने से किसी प्रकार बच सकते हैं? । यदि पुनर्जन्म को न मान कर नास्तिक मत धारण करें तो, कदाचित् बच जावें।

इस के सिवाय एक बात और भी बुद्धिमानों को ध्यान देने के योग्य है कि पितापुत्रसम्बन्ध कई प्रकार से मानाजाता है। मनु आदि धर्मशास्त्रों में १२ प्रकार के पुत्र लिखे हैं। कल्पना करो कि एक मनुष्य किसी पिता से उत्पन्न हुआ तो उस का पुत्र हो गया। उस वालक को ही किसी निर्वंश श्रीमान् ने गोद लेलिया तब वह द्वितीय का भी पुत्र हो गया और गोद लेने वाला पिता भी हो गया। इस से वह दो पिता का पुत्र कहाया। दैव योग से वह द्वितीय पिता संपत्ति सहित नष्ट भ्रष्ट हो जाय और उस बालक को तीसरा कोई सजातीय अपना पुत्र बना लेवे तो, वह तीन पिताओं का पुत्र एक ही जन्म में माना जायगा। और यज्ञादि कर्मकाण्ड में जहां २ पिता के नाम सहित (साथ बल्दियत) अपना नाम पेश करना लिखा है वहां यह भी लेख शास्त्र कारों ने कर दिया है कि जिस यजमान के दो तीन आदि

पिता हों उन को (तपोधनशर्मणः पुत्रोयजते । वेदशर्मणःपुत्रोयजते) इत्यादि प्रकार उन सब पिताओं का नामोच्चारण करे । तथा श्राद्ध तर्पण के समय भी जिस के दो आदि पिता हों वह उन सब पिताओं को जलदान पिण्डदान दिया करे क्योंकि (पुत्रःपिण्डप्रयोजनः) पुत्र का प्रयोजन ही शास्त्रानुकूल यह है कि वह अपने पिता को जलदान पिण्डदान देकर उद्धार करे । इस प्रकार जब एक ही जन्म में एक २ व्यक्ति अनेकों का पुत्र बनजाता और उस के अनेक पिता हो जाते हैं तब यदि भृगु जी के दो पिता एक मनु जी द्वितीय वरुण जीलिखे देख कर हमारे गोस्वामी जी बिना शोचे समझे उछलने कूदने क्यों लगे ? । और जब कि आचार्य को भी शास्त्रकारों ने एक बड़ा पिता माना है । विद्या सम्बन्ध और योनि सम्बन्ध दोनों ही सम्बन्ध बराबर के माने जाते हैं । बंश परम्परा भी दोनों ही प्रकार के सम्बन्ध से चलती है । यह बात लोक शास्त्र दोनों से सिद्ध भी है । मनु जी लिखतेहैंकि-

वेदप्रदानादाचार्यं पितरंपरिचक्षते ।
तत्रास्यमातासावित्री पितात्वाचार्यउच्यते ॥१७०॥
उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदःपिता ।
ब्रह्मजन्महिविप्रस्य प्रेत्यचेहचशाश्वतम् ॥१४६॥
आचार्यस्त्वस्ययांजातिं विधिवद्वेदपारगः ।
उत्पादयतिसावित्र्या सासत्यासाऽजराऽमरा ॥१४८॥

अर्थः—ये मनुस्मृति के द्वितीयाऽध्याय के श्लोक हैं । वेद के पढ़ाने वा वेद का दान देने से आचार्य को शिष्य का पिता विद्वान् महर्षि लोग कहते हैं । क्योंकि उत्पादक पिता भी वीर्य दान के कारण ही पिता कहाता है । उस वेद दान के समय गायत्री सावित्री माता और आचार्य पिता कहाता है इन्हीं दोनों से उस का दूसरा जन्म होता जिस से ब्राह्मणादि तीनों वर्ण द्विज कहाते हैं । उत्पादक और वेद का दाता इन दोनों पिताओं में वेद का दाता पिता अत्यन्त बड़ा मान्य वा मुख्य श्रेष्ठ पिता है क्योंकि ब्राह्मण वेद द्वारा हुआ द्वितीय जन्म संसार परमार्थ दोनों के लिये विशेष उपकारी अवश्यमेव होता है । अथवा आगे २ अनेक जन्मों तक वेदाध्ययन का फल नष्ट नहीं होता । इस से आचार्य पिता बड़ा है । वेदपारग आचार्य इस शिष्य की जैसी उत्तम जाति सावित्री के द्वारा (हैसियत, लियाक़त) बना देता

है वह जाति सत्य अविनाशी अजर अमर होती है इस कारण आचार्य बड़ा पिता है।

भृगुर्हवै वारुणिर्वरुणं पितरं विद्ययातिमेने।
शतपथ ब्रा० ११।३।४।१।

इस शतपथ श्रुति से भी यही बात निकलती है कि भृगुजी के वेद प्रदाता पिता वरुण जी थे। वेदादि शास्त्र विद्या में भृगु जी अपने आचार्य वरुण पिता से भी अधिक विद्वान् हो गये थे इसी कारण विद्या के द्वारा अत्यन्त मान्य किया। अथवा यह अभिप्राय श्रुति का हो कि वरुण जी विद्या में सर्वोत्कृष्ट विद्वान् थे इस कारण भृगुजी ने वरुण को अपना विद्या दाता पिता विशेष कर माना। गुरु को पिता मान कर ही उस के नाम से शिष्य को तर्पण श्राद्ध करना भी लिखा है। सारांश यह है कि शतपथ श्रुति से वरुण के शिष्य रूप पुत्र भृगु थे ऐसा अभिप्राय झलकता है। और मनुस्मृति में साफ लिखा है (पतीन्प्रजानामसृजं०) हम (मनुजी) ने मरीचि आदि दश प्रजापति बनाये इस से मरीचि आदि के उत्पादक पिता मनु जी सिद्ध हैं। इस प्रकार मनु का बचन सर्वथा वेदानुकूल है और मधुसूदन गोस्वामी का लिखना युक्ति शास्त्र दोनों से ही सर्वथा विरुद्ध है।

गो स्वा०–मनुस्मृति के अ० ३ श्लोक १६ में यह लिखा है कि–

शूद्रावेदीपतत्यत्रे रुतथ्यतनयस्यच।
शौनकस्यसुतोत्पत्या तदपत्यतयाभृगोः॥

अर्थ–अत्रि का और उतथ्य तनय गौतम का यह मत कि शूद्रा के साथ विवाह करने वाला, द्विज पतित होता है। शौनक का मत है कि शूद्रा के साथ विवाह मात्र करलेने से पतित नहीं होता, जब शूद्रा के पुत्र उत्पन्न कर दे तब पतित होता है, भृगु का मतहै कि, शूद्रा के साथ विवाह करने से, वा पुत्र उत्पन्न करने से, पतित नहीं होता जब शूद्रा के पुत्र के भी पुत्र हो जाय अर्थात् शूद्रा के वंश ही चल पड़े, तब पतित होता है। कब पतित होगा? इस बिरादरी के झगड़े को तो हम छोड़ देते हैं। यह तो चौधरियों का सा मत भेदहै। हम तो इस श्लोक की थोड़ी आलोचना करते हैं। यदि यह श्लोक मनु का बनाया होतो अपने बेटे पोतों के मत का संग्रह मनु ने पृथक् क्यों किया? क्या ये मनु का मत नहीं मानते थे? यदि मनु ने प्रीति से अपने बेटे पोतों के आग्रह से इस विषय में अपना मत कुछ न रक्खा हो

तो यह तो अवश्य मान लेना पड़ेगा कि, यह श्लोक उस मूल मनुस्मृति में तो नहीं होगा जो मनु ने भृगु को पढ़ाई थी। और जिस के विषय में मनुस्मृति के अ० १।५६ श्लोक में लिखा है कि–

एतद्वोऽयंभृगुःशास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः।
एतद्धिमत्तोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिलंमुनिः॥

अर्थ–तुम लोगों को अशेषतः इस शास्त्र को यह भृगु सुनावेगा । यह मुनि मुझ से सब शास्त्र पढ़ा है । कहिये जब मनुस्मृति को भृगु पढ़ा था तब यह भृगु का मत है यह कहां से उस शास्त्र में आया ? । यह श्लोक यदि भृगु ने पीछे से मनुस्मृति में लिख दिया माना जाय, तब भी असंगत होता है। क्योंकि पीछे से यों लिखना था (यह मेरा मत है) न कि यह भृगु का मत है) इस से स्पष्ट है कि ये वचन न तो मनु का प्रतीत होता है और न भृगु का।

समाधान–(शूद्रावेदी०) इत्यादि श्लोक का अर्थ करने समझने का भी जिन को होश नहीं वे गोस्वामी आदि शास्त्रीय विचारों में टांग अड़ाना चाहते हैं यह कलियुग की महिमा है। आज कोई वेद मतानुयायी क्षत्रिय राजा भारतवर्ष में स्वतन्त्र होता तो क्या ऐसे २ शास्त्रमर्मानभिज्ञ गोस्वामी (गौ के पति वृष की सी योग्यता रखने के कारण सच्चे अन्वर्थ गोस्वामी) आदि अनधिकारी लोग तपस्वी महर्षियों के गम्भीर सर्वोत्तम लेखों पर हस्तक्षेप करने को मुख उठा सकते थे ? । अर्थात् कदापि नहीं । पाठकगण ! देखिये हमारे गोस्वामी लिखते हैं कि " शौनक का मत है कि शूद्रा के साथ विवाह मात्र कर लेने से पतित नहीं होता, जब शूद्रा के पुत्र उत्पन्न करदे तब पतित होता है । " यह अर्थ श्लोक से नहीं निकल सकता किन्तु धर्म विरुद्ध द्वेष बुद्धि से ऐसी कल्पना की गयी है। सो युक्ति प्रमाण दोनों से ही विरुद्ध है। तर्क शास्त्र यह स्पष्टतया बतलाता है कि जो धर्म वा गुण अवयवों में न हो वह उन अवयवों के समुदाय में भी नहीं हो सकता। और जो गुण अवयवों में होता वही समुदाय में विशेष रूप से दीखता है। जैसे वालू मट्टी के एक २ कण में तेल नहीं इसी कारण वालू के समुदाय को पीड़ने से कदापि तैल नहीं निकल सकता। और तिल वा पोस्ता के एक २ दाने में भी तैल अवश्य है इसी से उसके समुदाय को पीड़ने से सेरों तैल बराबर निकलता है जो लड़का एक वर्ष में दो अंगुल बढ़ गया तो दो अंगुल का ३६० वां भाग एक दिन में भी अवश्य बढ़ जायगा। जो अन्न चार प्रहर में

धरा रहने से बिगड़ जाता है। वह एक २ घड़ी में भी कुछ २ अवश्य बिगड़ेगा। मनु जी लिखते हैं कि (संवत्सरेणपतति पतितेनसहाचरन्) पतित के साथ व्यवहार रखने से अच्छा निष्पाप मनुष्य भी एक वर्ष में पतित हो जाता है तब वह एक दिन तथा घड़ी २ में भी कुछ २ पतित होगा क्योंकि जो धर्म अवयवों में है ही नहीं वह समुदाय में आवेगा ही कहां से? यह बात गोस्वामी बतलावें। इसी नियम के अनुसार (शूद्रा वेदी०) इत्यादि श्लोक का अर्थ यह है कि शूद्र कन्या के साथ विवाह करने की इच्छा आरम्भ करते ही ब्राह्मण क्षत्रिय क्रमशः पतित होने लगते हैं। पतित होने का हद्द मानने में ऋषियों की राय में भेद है। पतित होने की हद्द से प्रयोजन यह है कि वह मनुष्य पतितों के तुल्य पूरा २ पापी हो गया। सो अत्रि और उतथ्य के पुत्र की तो राय यह है कि विवाह होते ही मानस वाचिक दो प्रकार का विवाह वा मेल शूद्र कन्या के साथ अवश्य हो गया। और मनसे स्त्री का ध्यान स्मरण भी अष्टविध मैथुन के अन्तर्गत है इस कारण शूद्रा के साथ सूक्ष्म सम्बन्ध पूरा २ हो जाने से वह पतित हो चुका। तथा शौनक और भृगु जी ने स्थूल सम्बन्ध को प्रधान माना है। क्योंकि सूक्ष्म मानस वाचिक पाप से बचना कठिन है। पर यह सभी का मत है कि वह पतित हो जाता है। जैसे चार घंटे में दूध से दही ठीक जम जाता है तब किसी ने कहा कि दो घंटे में ही दही का गुण खट्टा पन आजाता और दूध का स्वाद नहीं रहता। दूसरे ने कहा तीन घंटे में दही जमता तीसरे ने चार घंटे में जमना स्वीकार किया तो जैसे यहां तीन वा चार घंटे में दही जमना कहने वालों का यह प्रयोजन कदापि नहीं कि दो घंटे में दही जमता ही नहीं किन्तु मतलब उन का यह है कि यद्यपि दो घंटे में भी दही जम जाता है पर तीन तथा चार घंटे में खूब ही जम जाता है। क्योंकि यदि पहिले दो घंटों में दही कुछ भी न जमता तो अगले दो घंटों में भी कुछ नहीं जम सकता था (आद्यनादद्वयवत्) इसी के अनुसार शूद्रा के साथ विवाह होते ही ब्राह्मणादि पतित होता है परन्तु पुत्र पौत्र होने पर तो बिलकुल ही पतित हो जाता है। यही अभिप्राय प्रबल युक्ति सिद्ध होने से सर्वथा मन्तव्य है। इस लिये गोस्वामी का लिखना कि "शौनक का मत शूद्रा के साथ विवाह मात्र कर लेने से पतित न होना" सर्वथा बे समझी का है। गोस्वामी का यह लिखना कि (यह विरादरी का झगड़ा गंवार चौधरियों का

सा मतभेद है) सो यह बात भी वैष्णव सम्प्रदाय के मान्य ग्रन्थों से भी सर्वथा विरुद्ध है। श्रीमद्भागवत तथा वाल्मीकीय रामायणादि को देखने से उन में भी ऋषियों आचार्यों के मत भेद मिलेंगे। तब क्या गोस्वामी ऋषियों को भी चौधरियों के तुल्य तुच्छ दृष्टि से देखेंगे। वैष्णव सम्प्रदायों के मुख्य प्रवर्त्तक स्वामी रामानुज, बल्लभाचार्य, माध्वाचार्य और निम्बार्क हैं। क्या इन चारों में मत भेद नहीं है ?। अर्थात् इन उक्त आचार्यों में मत भेद होना गोस्वामी को निर्विकल्प मानने पड़ेगा। तब क्या वे इन उक्त आचार्यों को भी तुच्छ मानने का साहस करेंगे ?। ऐसा होगा तो वैष्णव सम्प्रदायों के सभी महाशय गोस्वामी की ठीक २ खबर लेंगे।

अब एक बात यह शेष रही कि (एतद्वोऽयं भृगुःशास्त्रं०) इत्यादि श्लोक से सिद्ध है कि (शूद्रावेदी०) श्लोक मनु का बनाया सिद्ध नहीं होता। क्यों कि जब मनुस्मृति को भृगु ने पढ़ा था तब यह भृगु का मत है यह उस शास्त्र में कहां से आया ?। इत्यादि कुतर्क का समाधान यह है कि-पूर्व काल में धर्म शास्त्रादि विषय रूप में माने जाते थे किन्तु उन के श्लोक वा वाक्यावली नियत नहीं थी। उसी विषय को मनु जी से भृगु महर्षि ने प्रचरित भाषा में पढ़ा जाना था पीछे भृगु जी ने उस विषय को पद वाक्य श्लोक रूप में निबद्ध किया। तब मनु जी का मत अलग लिखा और अत्रि आदि का मत पृथक् दिखाया। वह मनु जी का मत दो श्लोकों में दिखाया है-

शूद्रांशयनमारोप्य ब्राह्मणोयात्यधोगतिम् ।
जनयित्वासुतंतस्यां ब्राह्मण्यादेवहीयते ॥ १७ ॥
वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्यच ।
तस्यांचैवप्रसूतस्य निष्कृतिर्नविधीयते ॥ १९ ॥ अ० ३ ॥

अर्थ-ब्राह्मण पुरुष शूद्रा स्त्री को अपनी शय्या पर लिटाकर संयोग करे अर्थात् किसी भी प्रकार अपनी स्त्री बना ले तो वह अधोगति को प्राप्त होता और उस शूद्रा में सन्तान को उत्पन्न करे तो ब्राह्मणपन से हीन हो जाता है। जिसने शूद्रा स्त्री वा वेश्या के मुख में मुख लगाया तथा उसके श्वासों का वायु जिसके भीतर गया और उस शूद्रा माता में ब्राह्मण पिता से जो पैदा हुआ उन सब के शुद्ध होने का कोई भी प्रायश्चित्त धर्म शास्त्रों में नहीं कहा गया है। अर्थात् वह फिर शुद्ध ब्राह्मण नहीं हो सकता है।

और जो २ लोग ऋषि वा आचार्य कोटि में परिगणित हो गये उन के पिता पितामह वा गुरु कोई मान्य भले ही विद्यमान हों तब भी शास्त्रीय विषयों में उन की भिन्न राय जिस २ अंश में होगी वह पृथक् स्वतन्त्र लिखी जायगी। क्योंकि धर्मशास्त्रकारों का सिद्धान्त यह है कि–

नतेनवृद्धोभवति येनास्यपलितंशिरः।
योवैयुवाप्यधीयानस्तंदेवाःस्थविरंविदुः॥ मनु० अ० २॥

अर्थः–मनुष्य के बाल श्वेत हो जाने से वह वृद्ध नहीं होता किन्तु जो युवा पुरुष भी शास्त्र को ठीक पढ़ा है उसको देवता लोग वृद्ध नाम बड़ा मानते हैं। इसके अनुसार मनुजी ने भी अपने पुत्र भृगु का मत पृथक् लिखा हो तब कोई दोष नहीं है। और यदि इस बात को यों ही माना जाय कि (शूद्रावेदी०) इत्यादि श्लोक भृगु जी ने ही बनाया तब भी कुछ दोष नहीं क्योंकि अपने ग्रन्थ में भी अपना मत अन्य पुरुष से लिख सकते हैं। व्यास कृत वेदान्त सूत्रों में व्यास जी की राय भी प्रथम पुरुष के द्वारा अन्य आचार्यों के साथ पृथक् लिखी गयी है।

द्वादशाहवदुभयविधं वादरायणोऽतः॥ अ० ४॥

यहां वादरायण नाम व्यास जी का है। अपने पिता बादरि तथा अपने शिष्य जैमिनि का मत पृथक् लिखा है। इस प्रकार की शैली प्राचीन ग्रन्थों में जब अधिकांश दीखती है जिसके लिये सैकड़ों प्रमाण विद्यमान हैं। तब विना शोचे समझे गोस्वामी का यह लिखना कि (भृगु को यह लिखना था कि यह हमारा मत है) सर्वथा व्यर्थ है। क्योंकि ऋषियों ने अहं शब्द का व्यवहार अहंकार रूप रजोगुण के परित्यागार्थ भी परित्याग करना उत्तम समझा है। आगे गोस्वामी–और लीजिये--

ऋग्वेदोदेवदैवत्यो यजुर्वेदस्तुमानुषः।
सामवेदःस्मृतःपित्र्यस्तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः॥

मनुस्मृति ४ अध्याय १२४ श्लोक-अर्थ-ऋग्वेद के देवता देवता हैं, यजुर्वेद के देवता मनुष्य हैं, सामवेद के देवता पितर हैं। इस से सामवेद की ध्वनि अपवित्र है। वाह! जिस सामवेद को गीता में श्रीभगवान् ने अपना रूप कहा है "वेदानांसामवेदोऽस्मि" मनुस्मृति उस की ध्वनि को अशुद्ध बताती है!॥ (शेष आगे)

आ० स० अं० ९ पृ० ४१८ से आगे दैवतमीमांसा–

निरुक्त अ० ७ पाद २ खं० ३ में जो देवताओं के अपुरुषविध होने का द्वितीय पक्ष है। सो उस में (अपुरुषविधाः स्युरित्यपरम्) कहने से साफ २ सिद्ध है कि यह मत किन्ही अन्य आचार्यों का है किन्तु खास कर यास्काचार्य का यह मत नहीं। क्योंकि सभी ग्रन्थकारों की यह शैली दीखती है कि जहां वे लोग अन्यों का मत दिखाते हैं तब उस लेख के साथ कोई (इत्यन्ये। इत्यपरे। इत्येके। इत्येकम्। इत्यपरम्) इत्यादि शब्द लिखते हैं। और जहां ऐसा कोई शब्द नहीं लिखते वह मत उसी ग्रन्थकार का अभीष्ट सिद्धान्त समझा जाता है। तदनुसार निरुक्तकार ने खण्ड २। ३ में कहे देवता-विषयक प्रथम द्वितीय दोनों पक्षों में (इत्येकम्। इत्यपरम्) शब्द लिखा है। इस से ज्ञात होता है कि ये दोनों ही पक्ष यास्काचार्य के अभिमत सिद्धान्त पक्ष नहीं हैं किन्तु अन्य आचार्यों के मत हैं जिन में द्वितीय अपुरुषविध का पक्ष केवल अधिष्ठान वाद को ले कर चला होने से निःसन्देह एकदेशी है। क्योंकि इस द्वितीय पक्ष के आरम्भ में लिखा है कि (यद्दृश्यतेऽपुरुषविधं तद्यथाऽग्निर्वायुरादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति) अग्नि वायु आदि अपुरुषविध दीखते हैं वैसे सब देवता अपुरुषविध हैं। यह कथन प्रत्यक्ष-वादका साधक है। प्रत्यक्षवाद वेदका मत नहीं किन्तु वेदका मत यह है कि–

परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः ॥

वेद के वाच्यार्थ देवता लोग परोक्ष से प्रीति और प्रत्यक्ष से द्वेष रखते हैं। अर्थात् परोक्ष अदृष्टार्थ का मान्य और दृष्टार्थ प्रत्यक्ष का अमान्य करते हैं। इस से सिद्ध हुआ कि यह वेद का मत नहीं, किन्तु निरुक्तकार का असली वा मुख्य सिद्धान्त है वही तीसरे चौथे पक्षों में दिखाया है। इसीलिये तीसरे चौथे पक्ष के साथ (इत्यपरम्) इत्यादि शब्द नहीं लिखे। तीसरा पक्ष यह है कि (अपिवोभयविधाःस्युः) अथवा देवता दोनों प्रकारके हैं अर्थात् मनुष्यादि के तुल्य आकार वाले भी हैं। और अपुरुषविध भी हैं। वास्तव में यह तीसरा पक्ष ही निरुक्तकार का असली सिद्धान्त जान पड़ता है। और निरुक्त के वृत्तिकार दुर्गाचार्य लिखते हैं कि–

परेतु–अधिष्ठातारः पुरुषविग्रहाः। * एवमुभयोः प्रत्यक्षागमयोरप्यनुग्रहः कृतो भविष्यति।

अर्थः-कोई लोग कहते हैं कि अधिष्ठातृ देवता पुरुष नाम मनुष्य जैसे हाथ पांव वाले हैं। (इस से आगे-अधिष्ठान पृथिव्यादि मनुष्य जैसी वनावट के नहीं। इतना पाठ टीका में से किसी कारण निकल गया है। यह अनुमान है। क्योंकि जैसे मालिक शब्दका उच्चारण करते ही सिद्ध हो जाता है कि मिलिकियत कोई है जिस का मालिक कहाता है। यदि मिलिकियत कुछ भी न हो तो मालिक शब्द बन ही नहीं सकता। इसी के अनुसार अधिष्ठान (शरीरादि) न हो तो अधिष्ठाता भी नहीं कह सकते। इस से सिद्ध हुआ कि अधिष्ठाता देवता चेतन पुरुष के तुल्य और देवतों के अधिष्ठान पृथिवी जलादि सब अपुरुषविध शरीरादि के तुल्य हैं) इसप्रकार—

देवता उभयविध दोनों प्रकार के हैं। ऐसा मानने से प्रत्यक्ष प्रमाण और वेदादि शास्त्र प्रमाण दोनों ही के विचार ठीक घट सकते हैं विरोध कुछ नहीं आता। ऊपर लिखे (परे तु०) इत्यादि विचार पर सामश्रमी जी नोट करते हैं कि (टीकाकारसमकालवर्त्तिनस्त्विति यावत्। टीकाकार दुर्गाचार्य के समय में हुए लोग अधिष्ठातृ देवता को पुरुष विग्रहवत् मानते होंगे सो यह सामश्रमी की बड़ी भारी भूल है क्योंकि व्यास जी के बनाये वेदान्त सूत्र और शांकर भाष्य से अधिष्ठातृ देवता का पुरुष विग्रह होना सम्यक् सिद्ध है। जिस को हम ने सप्रमाण आगे लिखा है।

सामश्रमी जी इसी तृतीय पक्ष पर अपना मत गिरते पड़ते नोट में लिखते हैं कि-

वस्तुतोऽस्मन्मते तु तृतीयपक्षे उभयविध्यमेव देवाना मुररीकृतम् नतु तत्र किंचिदपि विशेषणमन्वेषणीयम् ॥

वस्तुतः हमारे मत में तो तीसरे पक्ष में पुरुष के तुल्य तथा अपुरुष के तुल्य ये दोनों प्रकार के देवता निरुक्तकार ने स्वीकार किये हैं उस पर अन्य कुछ भी ख़ासियत खोजना आवश्यक नहीं है इति। सो यदि ऊपर हमारे लेखानुसार अधिष्ठान अधिष्ठाता दोनों रूप के देवता सामश्रमी मान लेवें तब तो वेद का सिद्धान्त कुछ भी हिल चल न होगा। और द्वितीय प्रकार से मानें कि कुछ देवता पुरुष के तुल्य चेतन तथा कुछ अपुरुष विध अचेतन हैं। तो इस

* अधिष्ठानान्यपुरुषविधानीति टीकापाठः कथमपि नष्टइत्यस्मदनुमानम्। अधिष्ठाता चाधिष्ठानमपेक्षतएव। (भी० श०)

मत में भी अर्द्ध आस्तिकता रह सकती है। परन्तु अन्यत्र के नोटादि लेखों से सामश्रमी जी के मत में देवता मानने का सर्वथा ही निषेध सिद्ध है। क्योंकि सामश्रमी जी का संस्कृत लेख अं० ९ पृ० ४०६ से ४११ तक में जो छपा है उस को देखने वाले जान सकते हैं कि वह लेख कैसा है "इसी से ऐरावत हाथी के कन्धे पर चढ़ कर यज्ञ में इन्द्र देवता के आने से यज्ञ कुण्ड टूट फूट जावेंगे ऋत्विज् लोग चिल्ला कर भागेंगे। ऐसा मीमांसकों का उपहास करना भी ठीकर घटता है।" पाठक गण! क्या यह सामश्रमी का लेख नास्तिकता से सर्वथा परिपूर्ण भरा हुआ नहीं है ?। तब ऐसा मनुष्य देवता पक्ष को वास्तव में कुछ भी नहीं मान सकता। इन्द्रादि सभी देवता यज्ञशाला में एक साथ आकर पधारें तो भी यज्ञ कुण्ड क्या यज्ञशाला का एक तृण मात्र भी नहीं बिगड़ सकता क्योंकि इन्द्रादि देव स्थूल पाञ्च भौतिक नहीं हैं। किन्तु सूक्ष्म लिङ्ग शरीरमात्र होने से मनुष्यादि को सदा अदृश्य रहते हैं, इन चर्म चक्षुओं से किसी को देवता नहीं दीखते उन को देखने के लिये दिव्य चक्षु प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। यदि अर्जुन इन ही नेत्रों से भगवान् के विराट्रूप को देख सकता तो भगवद् गीता में यह क्यों लिखते ? कि—

दिव्यंददामितेचक्षुः पश्यमेयोगमैश्वरम्।

हे अर्जुन हम तुम को दिव्य चक्षु देते हैं जिन से तुम हमारे ईश्वरीय योग को देखो अर्थात् इन मानुष चक्षुओं से ईश्वरीय योग को तुम नहीं देख सकते हो। इस से सिद्ध हुआ कि निरुक्त के तृतीय पक्षानुसार भी सामश्रमी देवता विषय को नहीं मानते।

वेद से लेकर इतिहास पुराणों तक सनातन धर्मके मन्तव्य सर्वग्रन्थानुसार देवता पक्ष की जो सिद्धि होती और महर्षि तथा आचार्यों की अधिकानुमति से जैसा देवता पक्ष सनातन धर्म में माना जाता है। वह इसी निरुक्त के तीसरे पक्षानुसार है। इस को हम आगे और भी सिद्ध करेंगे।

उस से पहिले पूर्व मीमांसा के अनुसार निरुक्त में कहे चौथे प्रकार से मन्तव्य देवता पक्ष पर कुछ लिखते हैं। सो वह चौथा पक्ष निरुक्त के इसी तृतीय खण्डान्तमें यों है—

अपिवाऽपुरुषविधानामेव सतां कर्मात्मान एते स्युर्यथा यज्ञो यजमानस्यैष चाख्यानसमयः॥ निरु० ७। २। ३॥

भाषार्थः—अथवा चौथा मीमांसक पक्ष यह है कि देवता जो अपुरुष

विध हैं अर्थात् मनुष्य से विलक्षण रूप वाले हैं। उन्हीं देवताओं के रूपान्तर कर्मात्मक (कर्म ही रूप) देवता भी हैं। जैसे सामान्य कर यजमान का यज्ञात्मक प्रजापति देवता है। उसी प्रजापति के अवान्तर भेद इन्द्रादि कर्मात्मक देव विशेषात्मक हैं। जैसे पृथिवी सामान्य में सुवर्ण, मणि, काष्ठ, पाषाणादि अनेक अवान्तर भेद होने पर भी पृथिवी सब भेदों में अन्वित होने से सब पृथिव्यात्मक हैं। और अपने २ विशेष नाम रूपों से सुवर्णादि भिन्न २ भी हैं। वैसे ही यज्ञात्मक प्रजापति सब वेदोक्तकर्मकाण्ड का सामान्य देवता और इन्द्रादिविशेष कर्मात्माक देवता हैं।

इसी देवता विचार के निरुक्त पर सामश्रमी ने नोटों में अनेक प्रकार का अपना मनमाना विचार लिखते हुए मीमांसकमत पर प्रसन्नता प्रकट की और मीमांसकमत को देवता पक्ष के खण्डन में विशेष उपयोगी माना है। इस के सिवाय अन्य भी जो २ लोग पूर्वमीमांसा दर्शन को अनीश्वरवादी समझते हैं। उन सामश्रमी, आर्यसमाजी तथा अन्यों को समझाने के लिये हम मीमांसा दर्शन के सिद्धान्त का विचार अति संक्षेप से दिखाना चाहते हैं। यह मीमांसा का विषय अति विस्तृत और अति गम्भीर वा सूक्ष्म है जिस का लिखना और समझना दोनों ही कठिन तथा असम्भव से हैं। मीमांसा का जो मत वा सिद्धान्त यह है कि कर्मात्मक से भिन्न रूप देवता भले ही रहो परन्तु यज्ञ का फल कर्मात्मक देवता ही देता है। सो यह सिद्धान्त कुछ मीमांसाकार का कल्पित नहीं है। क्योंकि मूल वेद में भी ऐसे लेख हैं—

यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवाः।

देवता लोगों ने यज्ञ कर्म के द्वारा यज्ञ कर्मात्मक प्रजापति विष्णु भगवान् का पूजन किया वा करते हैं।

अक्षरसमूहे छन्दस उपसंख्यानम्। ओ३श्रावयेति चतुरक्षम्। अस्तुश्रौ३षडिति चतुरक्षरम्। ये३यजामहइति पञ्चाक्षरम्। यजेति द्व्यक्षरम्। द्व्यक्षरो वषट्कारः। एष वै सप्तदशाक्षरश्छन्दस्यः प्रजापतिर्यज्ञमनुविहितः॥ महा० पा० ४।४। सू० १४०

भाषार्थः—अक्षरों के समूहार्थ में छन्दः शब्द से यत् प्रत्यय का उपसंख्यान करो। चतुरक्षरादिछन्दसां समूहश्छन्दस्यः प्रजापतिः। ओ३श्रावय। ये चार। अस्तु श्रौ३षट्। ये चार। यज। ये दो। ये३यजामहे। ये पांच। वौ३षट्। ये दो। इन सत्रह अक्षरों का समूह रूप प्रजापति परमात्मा यज्ञरूप से विहित कहा जाता है।

शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थोंमें ऐसी (प्रजापतिर्वैयज्ञः । सप्तदशः प्रजापतिर्यज्ञः । यज्ञोवैविष्णुः) अनेक श्रुति हैं इत्यादि श्रुतियों का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि क्रियात्मक वा कर्मात्मक प्रजापति परमात्मा ही यज्ञरूप है। क्योंकि वेद का जब यह सिद्धान्त है कि—

रूपंरूपं मघवा बोभवीति । इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपईयते ॥

मघवान् ऐश्वर्यवान् इन्द्रेश्वर वार २ नानाविध रूपों वाले होते हैं। अनेक माया प्रकृत्युपाधियों के भेद से इन्द्रेश्वर बहुत रूपों वाले प्राप्त होते हैं। अर्थात् ईश्वर उस २ उपाधि में उसी २ रूप से विद्यमान है। अथवा नृसिंहादि विलक्षण २ रूपों द्वारा ईश्वर भिन्न २ समयों में प्रकट होता है। जब कि उन २ पदार्थों में भिन्न २ रूपधारी एक ही ईश्वर सिद्ध है तब यज्ञ में यज्ञात्मक वा कर्मात्मक भी उस का मानना सिद्ध है। चाहें यों कहो कि (यज्ञो वै प्रजापतिः । यज्ञो वै विष्णुः) इत्यादि श्रुतियों के सर्वथा अनुकूल ही मीमांसाकार जैमिनि आचार्य का मत है कि यज्ञात्मक वा कर्मात्मक देवता ही वेदोक्त कर्मकाण्ड में देवता पदवाच्य होने से वही फल देने वाली है। मीमांसाकार के इसी सिद्धान्त को व्यापक रूप में देखना मानना हो तो यों कहा जायगा कि वैदिक वा लौकिक जो २ काम जिस २ वस्तु वा क्रिया पर निर्भर माना जाना जायगा वहां उसी वस्त्वात्मक देव ईश्वर उस काम का अधिष्ठाता फलदाता मान लेना चाहिये। इसी मीमांसा के सिद्धान्त को ले कर श्रीभगवद्गीता में यह लिखा है कि (यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि) यज्ञों में जपयज्ञ मेरा ही रूप है। अर्थात् ईश्वर नाम विष्णुभगवान् सामान्य कर सर्व यज्ञ रूप हैं परन्तु जप यज्ञमें उनकी विशेषता वा अधिकता है। जैसे जलतत्त्व नाना रूपों से सर्वत्र विद्यमान होने पर भी जलाशयों में उस की विशेषता अधिकता (खासियत) है। और मीमांसा के सिद्धान्त को लेकर ही भीष्मस्तवराज में भीष्मपितामह ने भगवान् की स्तुति में कहा है—

चतुर्भिश्चचतुर्भिश्च द्वाभ्यांपञ्चभिरेवच ।
हूयतेचपुनर्द्वाभ्यां तस्मैयज्ञात्मनेनमः ॥

यज्ञकर्मणः सर्वत्र प्रधानकृत्येषु—पूर्वं हविरादायाध्वर्युर्ब्रूते—ओ ३ श्रावय । तदुपरि—अग्नीध्—अस्तुश्रौ ३ षट् । पुनरध्वर्युः—यज । तदुपरि होता—ये ३ यजामहे—इत्युक्त्वा

याज्ञान्ते–वौ३षट्–इति वदति । तदाऽध्वर्युराहुतिं क्षिपति । प्रत्याहुतौ यज्ञेषु कृत्यमेतज्जायते । एवं पञ्चकृत्वः सप्तदशाक्षरैर्यज्ञकर्मणि यो हूयत आहूयते तस्मै यज्ञात्मने नमः ॥

अर्थः–(श्रो ३ श्रावय) इत्यादि चार, चार, दो, पांच, और दो ४ । ४ । २ । ५ । २ अक्षरों द्वारा जो यज्ञ में पुकारा जाता है वही यज्ञात्मक देव ईश्वर है उस को भी हमारा नमस्कार है । तथा पूर्वमीमांसा तथा अन्य कई मतों के विचारानुसार हनुमन्नाटक में यों लिखा है कि–

यंशैवाःसमुपासतेशिवइति ब्रह्मेतिवेदान्तिनो,
बौद्धाबुद्धइतिप्रमाणपटवः कर्त्तेतिनैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथजैनशासनरताः कर्मेतिमीमांसकाः,
सोऽयंवोविदधातुवाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथोहरिः ॥१॥

अर्थ–शैव लोग शिवनाम रूप से, वेदान्ती ब्रह्मनामरूप से, बौद्ध लोग बुद्ध नाम रूपसे, नैयायिक लोग कर्त्ता नाम रूप से,जैन लोग अर्हन् नाम रूप से और मीमांसक लोग कर्त्ता नाम रूप से जिसकी उपासना करते हैं । यह कथन उपासकों के परिगणन (फेरिस्त) दिखाने के लिये नहीं है किन्तु उस के नाम रूपों के उदाहरण मात्र (नमूना) दिखाया है । इस लिये अन्य भी अनेक प्रकार आ सकते हैं कि ईसाई लोग गाड नाम रूप से मुसलमान लोग खुदा नाम रूप से आर्यसमाजी परमेश्वर नाम से (इन के मत में रूप कुछ नहीं नाम ही नाम होने से शून्य वाद मत है) उपासना करते मानते हैं । जब कि उस के सभी नाम हैं और असंख्य रूप हैं । तो सभी नाम रूपों से उपासना हो सकती है । यह सनातन धर्म का परम विस्तृत सिद्धान्त है जिस के पेटमें सभी समा जाते हैं। इस उक्त श्लोक में कर्म नाम रूप से उसकी उपासना मीमांसक लोग करते मानते हैं। इस प्रकार देवता वा ईश्वर को मानने के एक प्रकार (जो श्रुति स्मृति के प्रमाणानुकूल है) का नाम जब मीमांसा का मत सिद्ध होता है । तब सामश्रमी आदि जो लोग देवता वाद का प्रतिपक्षी मीमांसक मत को मान कर अपने नास्तिक मत से मिलता हुआ मान के प्रसन्न संतुष्ट होना चाहते हैं यह उनकी बड़ी भूल है ॥ (शेष आगे)